सिद्ध योग

संस्थापक

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 37 अक : 11-12

फ़रवरी, मार्च 2005

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- क्रियायोग-तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 8
- हिमालय के अमर महायोगी – पूर्णचन्द्र पन्त 10
- अध्यात्म का गणितीय सूत्र – डा० ऋषिराम शर्मा 14
- श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमोनमः – द्वारका प्रसाद शर्मा 22
- दिखा दो रास्ता मुझको........ – राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू) 24
- रामकृष्ण परमहंस की अमृतवाणी 26
- लल्ला ! पुष्कर आ गया तो ट्रेन क्यों रुकी है ? – केशवदेव उपाध्याय 29
- श्री प्रभु चरणों में समर्पित – राजेश कुमार सिंह 33
- चंचल हि मनः कृष्ण – रमेश्वर खण्डेलवाल 34
- आश्रम समाचार–गंगापुर सिटी का शिविर –संतोष शर्मा 36
- २८वाँ योग शिविर-संगीत सम्मेलन सम्पन्न 38
- स्वास्थ्य चर्चा 39

एक प्रति	:	रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	:	रु. 100-00
द्विवार्षिक	:	रु. 190-00
आजीवन	:	रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 37 अंक 11-12	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्, कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	फरवरी-मार्च 2005

अन्धन्तमः प्रविशन्ति
येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो
य उ सम्भूत्यां रताः।।

(यजुर्वेद ४०/९)

अर्थात्

जो लोग सकल जड़जगत् के अनादि नित्य कारण प्रकृति को उपास्य समझते हैं; वे अविद्या को प्राप्त करके सदा दुखी रहते हैं और जो उस कारण प्रकृति से उत्पन्न हुए पृथ्वी आदि स्थूल, कार्य कारण रूप सूक्ष्म, अनित्य संयोग से उत्पन्न कार्य जगत् को अपना इष्ट उपास्य देव मानते हैं वे गाढ़ अविद्या को प्राप्त करके उससे अधिक दुःखी रहते हैं। इसलिए सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की ही सदा उपासना सब करें।

अमृतकण

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

(गीता ६/३६)

जिनका मन वश में नहीं उनके लिए योग का प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यह मेरा मत है, परन्तु मन को वश में किये हुए प्रयत्नशील पुरुष साधन द्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं।

❊ ❊ ❊

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

(मनुस्मृति)

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है। उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं। प्राणों को रोकने से ही मन रुकता है।

❊ ❊ ❊

सन्तोषो वै स्वर्गतमः सन्तोषः परमं सुखम्।
तुष्टेर्न किञ्चित् परतः सा सम्यक् प्रति तिष्ठति।।

(महाभारत)

मनुष्य के मन में सन्तोष होना स्वर्ग की प्राप्ति से भी बढ़कर है। संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। मन में संतोष के भली भाँति प्रतिष्ठित हो जाने पर जो सुख–शान्ति की उपलब्धि होती है, उससे बढ़कर संसार में और कुछ भी नहीं है।

❊ ❊ ❊

दैवं पुरा यत् कृतमुच्यते तत् तत्पौरुषं यत्विह कर्मदृष्टम्।
प्रवृत्ति हेतुः विषमः स दृष्टो निवृत्तिहेतुर्हि समः स एव।।

(चरक संहिता शारीर)

पूर्व जन्म या पूर्वकाल में किया हुआ कर्म "दैव" (भाग्य) कहा गया है और इस जन्म या वर्तमान काल में किया गया कर्म "पौरुष" कहा गया है। दैव और पौरुष की विषमता (प्रतिकूलता) रोग की प्रवृत्ति (उत्पत्ति) में कारण होती है और इसकी समता (अनुकूलता) रोग की निवृत्ति (शमन) में कारण होती है।

❊ ❊ ❊

विशेष लेख

क्रियायोग—तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें कई बार व्याख्यानों में क्रियायोग के बारे में बताया हुआ है। तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान को **क्रियायोग** या **साधना** योग कहते हैं। क्रम से इनकी साधना करते–करते योगी अपने लक्ष्य–समाधि तक पहुँच जाता है। **'नातपस्विनो योगः सिद्धयति'** जो तपस्वी नहीं है उसे योग सिद्ध नहीं हो सकता। तप से ही जन्म–जन्म के संचित पाप समूह का नाश होता है। पतञ्जलि जी महाराज ने योग दर्शन में इस क्रियायोग को इस क्रम से ही रखा है जिससे साधक ईश्वर समर्पण तक पहुँच जाये। तप के अन्तर्गत सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि के जोड़ों को सहन करना बताया है। हठयोग में प्राणायाम को बहुत बड़ा तप माना है। इससे शरीर और इन्द्रियों के मल जल जाया करते हैं। योगदर्शन में तप का फल बताया गया है।

'कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः' अर्थात् तप से अशुद्धि के क्षय हो जाने पर योगी को कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि प्राप्त होती है। कायिक सिद्धि का अर्थ है– शरीर का अत्यन्त लावण्यमय हो जाना, वज्र की तरह काय का दृढ़ हो जाना आदि। ऐन्द्रिय सिद्धि के होने पर ज्ञानेन्द्रियों के मल दूर हो जाने के कारण, दूरदर्शन, दूरश्रवण आदि योग्यतायें योगी में आ जाती हैं। इस प्रकार से तप के प्रभाव से साधक को कायिक और ऐन्द्रिय सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाया करती हैं। क्रियायोग अथवा साधन योग का दूसरा अंग है **स्वाध्याय**। स्वाध्याय का अर्थ है–

'प्रणवादिपवित्राणां तपो मोक्षशास्त्राध्ययनम् वा' परमात्मा के ओंकारादि पवित्र नामों का जाप करना अथवा उपनिषद्, गीतादि मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन व मनन करना स्वाध्याय कहलाता है। **'स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः'** स्वाध्याय का फल होता है–इष्ट देव का साक्षात्कार। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये व्यासदेव महाराज कहते हैं–**'देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शनंगच्छन्ति कार्य चास्य वर्तन्त इति'** देवता ऋषि–मुनि तथा सिद्ध पुरुष स्वाध्यायशील व्यक्ति के समीप जाकर दर्शन देते हैं और उसका अभीष्ट कार्य कर दिया करते हैं। स्वाध्याय और ध्यान के विषय में योग शास्त्र का सिद्धान्त है–

स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याययोग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय करने के पश्चात् ध्यान योग का अभ्यास करे। ध्यान योग के पश्चात फिर स्वाध्याय में जुट जाये। इस प्रकार मन्त्र जप एवं ध्यान से परमात्मा का दर्शन हो जाता है। इसे दूसरे शब्दों में भी कहा है–

जपशान्तः शिवं ध्यायेत्। ध्यान शान्तः शिवं जपेत्।।

अर्थात् साधक प्रथम जप करे। तत्पश्चात शिव का ध्यान करे। ध्यान करता करता थक जाये तो पुनः मन्त्र जप प्रारम्भ कर दे। इस प्रकार करने से जप और ध्यान की सम्पत्ति से इष्ट के दर्शन हो जाया करते हैं। मैं तुम्हें प्रतिदिन उपदेश करता हूँ कि तुम प्रातःकाल दो घण्टे अपने गुरु मन्त्र का जाप तथा एक घण्टा ध्यान अवश्य किया करो। यद्यपि दीक्षाकाल में तुम्हें श्वास प्रश्वास से मन्त्र जपने का आदेश दिया गया था किन्तु बहुत से लोग श्वास–प्रश्वास की विधि का पालन नहीं कर सकते। दो–चार बार जपने से ही उनको निद्रा आ जाया करती है इसलिये जैसे श्री आनन्दकन्द प्रभु जी किसी किसी को आज्ञा दिया करते थे, उसी आज्ञा को मैं तुम्हें देता हूँ कि अपने गुरुमन्त्र को जीभ से बोल बोलकर जपो। जीभ से मन्त्र जपते समय आवाज होंठों से बाहर न आये। इसे **उपांशु जप** भी कहते हैं। दो–तीन घण्टे लगातार इस प्रकार से नित्य जाप करने से कुछ दिनों में यह मन्त्र मन में घूमने लगेगा फिर जीभ से जाप करने की आवश्कता नही होती। मन्त्र स्वतः ही मन में घूमने लगेगा। किन्तु इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि यदि तुम कमर झुका कर अथवा दीवार के साथ पीठ लगाकर जाप करते हो तो निद्रा आयेगी ही आयेगी। इसलिये पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन आदि आसन में बैठकर ही जाप करना चाहिये। इन आसनों में मेरूदण्ड स्वतः सीधा रहता है। भगवान ने गीता में कहा है–

समं कायशिराग्रीवं धारनयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

अर्थात् काया सिर और ग्रीवा को सम रखकर इधर उधर न देखकर नासिकाग्र में ध्यान करना चाहिये। नासिकाग्र ध्यान की बात और है अभी मैं तुम्हें इसके बारे में बता नहीं रहा हूँ। कभी किसी और प्रसंग में कहेंगे। तुम्हें तो जो आज्ञा दी गई है वही करो। मन में जप स्वतः चलता रहे इसके लिये भी आवश्यकता है कि तुम मेरूदण्ड को सीधा रखो। मन में दो–तीन घण्टे जिनका मानस जाप चल पड़ता है, तो शनैः शनैः वह मन्त्र बुद्धि में प्रवेश कर जायेगा। कारण शरीर में प्रवेश करने के बाद वह स्थिति आ जायेगी जो इस मन्त्र में दी गई है **'स्वाध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते'**। कारण शरीर में पहुँचने के बाद परमात्मा का प्रकाश स्वाभाविक हो जायेगा। इस प्रकार क्रम से जप और ध्यान करने से इष्टदेव के दर्शन हो जाते हैं। हमारी हर समय यह चेष्टा बनी रहती है कि हमारा हर बच्चा ध्यान की ऊँची स्थिति को प्राप्त हो। इसलिये मैं तुम्हें प्रायः बतलाता ही रहता हूँ। थोड़ी देर के लिये मान लो तुम मूलाधार कमल में ध्यान करने लगते हो तो हम कल्पना करेंगे कि स्वर्णिम रंग के चार दल का कमल है। यह कमल सुषुम्ना के आरम्भ में इसके अन्दर है। गुदाद्वार से चार अंगुल ऊपर है। इसलिये आवश्यक है कि मेरूदण्ड को सीधा रखा जाये। यदि कोई शरीर की चीरफाड़ कर इन कमलों को देखने का प्रयास करेगा, तो यह कमल उसे नहीं मिलेंगे क्योंकि ये विज्ञानमय कमल

है। ये दिव्य होने से दिव्य दृष्टि से ही देखे जा सकते हैं। दिव्य दृष्टि वही जो भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दी थी। अर्जुन ने भगवान के विराट रूप को देखना चाहा; किन्तु भगवान ने कह दिया–

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योग मैश्वरम्।।

अर्थात् हे अर्जुन ! तुम अपनी इन सामान्य आँखों से मेरे दिव्य रूप को नहीं देख सकते हो। इसलिये मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ। इससे मेरे योगैश्वर्य को देख। भगवान ने अर्जुन को दिव्यदृष्टि देकर अपना दिव्य रूप दिखाया। इसलिये इन कमलों को ध्यान की दृष्टि से ही देखा जा सकता है। स्वामी दयानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र में भी यह बात मिलती है कि उन्होंने किसी मृत शरीर का चीरफाड़ करके इन कमलों को ढूँढने का प्रयास किया था। किन्तु ये कमल उन्हें नहीं मिले। कारण इसका केवलमात्र एक ही था कि यह इस तरह से मिलने की चीज ही नहीं है।

इसलिये मैं तुम्हें जप और ध्यान को बढ़ाने पर बल देता हूँ। योगदर्शन में भगवान पतंजलि ने समाधि तक पहुँचने के उपाय तो बहुत से बताये किन्तु उनमें तीन बातें मुख्य बताई हैं। उनमें सबसे पहली है–धारणा। **'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** किसी एक लक्ष्य स्थल पर चित्त को एकाग्र करने का नाम धारणा है। हम जब मूलाधार कमल का ध्यान करना प्रारम्भ करते हैं तो सर्वप्रथम धारणा की अवस्था में कल्पना करते हैं कि चतुर्दल कमल पर इष्टदेव गणपति विराजमान हैं। व्यासदेव जी ने धारणा के अर्थ को और स्पष्ट करते हुये कह दिया है **'तत्रापि तावत् वृत्तिमात्रेण बन्धो धारणा'** लक्ष्य स्थल पर वृत्तिमात्र से मन को ठहराना धारणा है। वृत्तिबन्ध का अर्थ है किसी वस्तु को मन की वृत्ति से देखना। यदि मूलाधार कमल का ध्यान करने लगते हो तो कल्पना से देखा यह मूलाधर कमल है इस पर मेरे इष्टदेव अधिष्ठातृदेव के रूप में विराजमान हैं। ऐसा मन में सोचना है। ऐसा नहीं कि उनका चित्र लेकर आँख खोलकर लगातार देखना शुरू कर दो। इसलिये कल्पनामात्र से–विचार मात्र से अपने शरीर के भीतर लक्ष्य स्थान पर देखने को धारणा कहते हैं। यह शास्त्रीय नियम है कि यदि कोई छः माह तक ठीक प्रकार से धारणा का अभ्यास कर लेता है तो उसका ध्यान लगने लग जाता है। ध्यान का अर्थ **'तत्र प्रत्ययेकतानताध्यानम'** लक्ष्य पर वृत्ति धारावत् बनी रहे। जिनका हम ध्यान कर रहे हैं वे बराबर दिखाई देते रहें। ध्यान में तीन प्रक्रियायें होती हैं–ध्याता, ध्यान और ध्येय। प्रक्रियात्मक ध्यान में यह तीन चीजें रहती हैं। ध्यान की प्रगाढ़ अवस्था आ जाने पर **'तेदवार्थ मात्र निर्भासम् स्वरूप शून्यमिव समाधि'**।

वह ध्यान ही जब अर्थ मात्र रूप में निर्भासित होता रहे अर्थात् जिसका ध्यान कर रहे हैं वह ही वह अनुभव में रहे और अपना आपा भी खत्म जैसा हो जाये उसी का नाम समाधि है। यह **सम्प्रज्ञात समाधि** है। समाधि होते–होते धारणा, ध्यान और समाधि जब एक विषयक हो

जाते हैं अर्थात् जिसमें धारणा करनी शुरू की, उसी का ध्यान हो, और उसी में समाधि हो जाती है तो इसे **संयम** कहते हैं। **'त्रयमेकत्र संयमः'** ये तीनों एक विषयक होने जाने पर 'संयम' नाम से कहे जाते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि में साधक रामोऽहम् कृष्णोऽहम् शिवोऽहम् की अनुभूति करता है। समय सिद्ध हो जाने पर योगी जिस–जिस वस्तु में संयम करेगा उसका तत्काल ज्ञान उसे हो जायेगा। उसके लिये कोई वस्तु अज्ञेय नहीं रहती। इस प्रकार से यथार्थ ज्ञान की यह विधि मैं क्रियायोग के विषय में समझा रहा था। क्रियायोग के दो अंग तप और स्वाध्याय का मैंने वर्णन कर दिया। इसका तीसरा अंग है **ईश्वर प्रणिधान**। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ उस परमगुरु को अपना आपा सौंप देना, अपना अस्तित्व सौंप देना। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् ने ईश्वर प्रणिधान का क्रम एवं इसका फल बताते हुये इस प्रकार कहा है–

मच्चित्ता मद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

अर्थात् मेरे भक्त जिनके मन और प्राण निरन्तर मुझमें ही अर्पित हैं वे परस्पर एक दूसरे को मेरे दिव्य प्रभाव एवं कर्म–लीला को सुनाते हुये अत्यधिक प्रसन्न होते हैं और फिर मुझ वासुदेव में ही नित्य रमण करते हैं। इस प्रकार से निरन्तर समर्पण का फल भगवान बतलाते हैं–

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

अर्थात् ऐसे जो निरन्तर मुझ में चित्त लगाये हुये अत्यन्त प्रीति से मुझे भजने वाले हैं। उन्हें मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार से भगवान ने आत्म समर्पण से बुद्धियोग की प्राप्ति एवं बुद्धियोग की प्राप्ति से भगवद् प्राप्ति का उपदेश दिया है। ईश्वर समर्पण के उपाय के रूप में भगवान अर्जुन से कहते हैं–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।।

अर्थात हे अर्जुन ! तू जो कुछ कर्म करता है जो खाता है जो यज्ञादि करता है, जो दान देता है, जो धर्माचरण रूप तप करता है ये सब अर्पण कर दे। इस प्रकार से करने का परिणाम यह होगा कि शुभाशुभ फल प्रदान करने वाले कर्मबन्धन से मुक्त होकर तू मुझ को प्राप्त होगा। इस प्रकार से आत्म समर्पण अथवा ईश्वर प्रणिधान से ईश्वर प्राप्ति का सिद्धान्त भगवान ने दिया है। अस्तु। मैं क्रियायोग के अंगों के विषय में बतला रहा था। क्रियायोग के ये तीन अंग इस क्रम से हैं कि इनका अनुष्ठान करता हुआ साधक ईश्वर प्रणिधान तक सहज ही पहुँच जाता है। प्रथम अंग के अर्न्तगत साधक तप करता है उसे कायिक व ऐन्द्रिय शक्तियाँ स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। तप में ब्रह्मचर्य का तप सबसे बड़ा तप माना गया है। तप के साथ–साथ साधक

स्वाध्याय करता है इधर भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी सहन करते हुये उसका तप चल रहा है उधर स्वाध्याय चल रहा है–मन्त्र का अनवरत जाप चल रहा है। इसका परिणाम निकलेगा ऋषि–मुनि देवता और सिद्ध उसके सामने आयेंगे, वरदानादि देंगे। उनकी कृपा साधक पर होगी। अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा तो ईश्वर समर्पण अपने आप हो जायेगा। ईश्वर समर्पण जब हो जाता है तो वह उस समय किसी से बात नहीं करना चाहता। उसका मन अपने इष्ट देव के लिये ही तड़पता रहता है। 'तत्सुखे सुखित्वम' के नियमानुसार इष्ट के सुख व प्रसन्नता में ही अपना सुख मानता है। तुमने भगवान श्री कृष्ण का एक उपाख्यान सुना होगा। जिस समय भगवान् द्वारिका पुरी में रहते थे तो उन्होंने भक्तों की परीक्षा की दृष्टि से एक अभिनय रचा। भगवान कहने लगे–मेरे पेट में बहुत दर्द हो रहा है। वे तड़पने का अभिनय करने लगे। उसी बीच वहाँ नारद जी आ पधारे। उन्होंने भगवान के कष्ट को देखकर पूछा– 'भगवन ! आपका यह दर्द कैसे ठीक हो सकता है ? वही उपाय करें। भगवान कहने लगे–मेरा यह दर्द अभी दूर हो सकता है यदि कोई मेरा भक्त या प्रेमी अपना पैर धोकर मुझे जल पिला दे। किन्तु एक बात अवश्य है कि जो ऐसा करेगा उसे नरक में भी जाना पड़ सकता है। भगवान की तीन पटरानियाँ, रुक्मिणी, जामवंती और सत्यभामा थी। उनके सामने भी अपने चरण धोकर देने का प्रस्ताव रखा गया किन्तु नरकवास के भय से कोई भी पैर धोकर देने को तैयार नहीं हुई। अन्त में एक व्यक्ति को श्री वृन्दावन भेजा गया। वहाँ राधा जी से कहा गया कि यदि वे अपना चरण धोकर वह जल भगवान कृष्ण को भेज सकें तो उनका भयंकर पेट दर्द दूर हो सकता है किन्तु नरकवास के भय की बात उन्हें भी सुनायी गयी। 'तत्सुखे सुखित्वम' वाली बात श्री राधा जी में थी। यदि उनके प्रियतम उनके पैर धोये जल से ठीक हो सकते हैं तो उसमें देरी फिर किस बात की'। श्री राधा जी ने नरकवास का किञ्चद भी भय न मानते हुये सहर्ष अपने पैर धोकर जल दे दिया। यह है समर्पण का ठीक स्वरूप। समर्पण की इस अवस्था तक पहुँचने के लिये ही क्रियायोग की साधना अपेक्षित है। इसलिये यह सिद्धान्त सामने रखो–

स्वाध्यायद्योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।।

दो तीन घण्टे जाप करो। फिर ध्यानाभ्यास करो। ध्यानाभ्यास से थक जाने पर पुनः मन्त्र जाप करो। इस प्रकार मन्त्र जाप एवं ध्यान योग के अभ्यास से परमात्मा प्रकट होते हैं–इष्ट देव के दर्शन होते हैं, ईश्वर प्रणिधान या आत्म समर्पण, समाधि प्राप्ति का एक छोटा साधन है। पतंजलि जी महाराज ने स्थल–स्थल पर इस बात का संकेत किया हुआ है। इसलिये चलते–फिरते, उठते–बैठते हर समय अपने मन को जाप में लगाने का प्रयास करो इस प्रकार से दृढ़ता से इस पवित्र मार्ग पर चलोगे तो श्री प्रभु जी की कृपा अवश्य होगी। उनका तेज हृदय में व्याप्त हो जायेगा। इसलिये इस अमरता के देने वाले योग मार्ग में संलग्न हो जाओ। यही मनुष्य के कल्याण का मूल साधन है। बार–बार आशीर्वाद।

❊ ❊ ❊

हमारी पत्रिका एवं नववर्ष

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

हमारी 'सिद्ध योग' पत्रिका अपनी आयु के ३७ वर्ष को पूरा कर अप्रैल विशेषांक के साथ ही नये वर्ष में प्रवेश करेगी। श्री गुरुदेव भगवान् ने इस पत्रिका का सूत्रपात किया था ताकि योग साधकों को घर बैठे ही योग के यथार्थ स्वरूप का बोध हो जाये तथा साधक अपनी साधना एवं लक्ष्य को ठीक–ठीक समझकर योगारूढ़ हो जाये। योग का क्या स्वरूप है ? क्या परिभाषा है ? इस मार्ग के विघ्न क्या है ? योगप्राप्ति में गुरुदेव की भूमिका क्या है ? आदि–आदि विषयों का प्रतिपादन ही इस पत्रिका का लक्ष्य है।

योग अमृत विद्या है, यह अन्यय वस्तु है यही इसका स्वरूप है जिसे गीता में भगवान् ने स्थान–स्थान पर बतला दिया है। जिस को शास्त्रों में अध्यात्म विद्या कहा जाता है वह योग ही है। भवरोग के शमन का एक मात्र औषध योग है। इस योगामृतरूपी संजीवनी बूटी का जो रसपान कर लेता है वह अमर हो जाता है। ध्यान योगरूपी अमृत का पान करने वाला सब प्रकार से पवित्र हो जाता है। मनुष्य को पवित्र करने वाली योग जैसी कोई दूसरी वस्तु नही है। इसी योग के दिव्य सन्देश को साधकों तक पहुँचाना **सिद्धयोग** का लक्ष्य है। पत्रिका में योगमत व योगसिद्धान्तों का प्रतिपादन करना अथवा लक्ष्य है किसी सम्प्रदाय, मत या धर्म का खण्डन करना नहीं। हिन्दी के पत्र–पत्रिकाओं में इसकी अपनी अलग पहचान है। यह गुरुदेव के स्मृति चिन्ह के रूप में भी अविस्मरणीय है। पत्रिका के मनन एवं पठन से ज्ञान बढ़ता है श्रद्धा बनती है तथा संशय दूर होते हैं। गीता में भगवान् कहते हैं– जो अज्ञ है, अश्रद्धालु है तथा संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है अर्थात् परमार्थ पथ से च्युत हो जाता है। इसलिये योग साधक को निरन्तर ज्ञान को बढ़ाते रहना चाहिये। इससे योगमार्ग में होने वाले संशय भी दूर हो जाते हैं।

कई ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें पत्रिका पढ़ने से ही योग का मार्ग मिला है। गुरुदेव के विषय में पढ़ने से श्री प्रभु जी के दिव्य दर्शन होने लगते हैं तथा उसे दिव्यानुभूतियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। इस प्रकार से वे श्री प्रभु जी से स्थायी रूप से जुड़ जाते हैं। ऐसे में पत्रिका ही सशक्त पथप्रदर्शिका बनकर साधकों का मार्गप्रदर्शन करती है।

हमारे पास पाठकों के बहुत से पत्र आते हैं जिसमें लिखा रहता है हम पत्रिका के नियमित पाठक हैं जब हमें पत्रिका मिलने में देर हो जाती है तो हम बैचेन हो जाते हैं। इस प्रकार से

पत्रिका इनके योग जीवन का पाथेय बनकर सहारा देती है। इसके पढ़ने मात्र से ही कई लोगों की जीवन धारा बदल गई। वे सन्मार्ग में आ गये और योग के पवित्र मार्ग के पथिक बनकर जीवन को धन्य बनाने लगे।

पत्रिका में कलिमल विध्वसंक आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के दिव्य चरित्र पढ़ने को मिलते हैं। श्री प्रभुजी में ही ब्रह्म प्रतिष्ठित हैं जो अपने चित्त में गुरुमूर्ति को स्थापित कर लेता है उसका सब प्रकार से कल्याण होने लगता है। गुरुदेव ही कल्पतरू कहे जाते हैं उनके चिन्तन करने वालों की सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। सारी चिन्तायें दूर हो जाती हैं। गुरुदेव की कृपा से ही शिष्य के चित्त में योग का प्रकाश होता है। 'सिद्धयोग' साधना परम्परा में ऐसा होता है 'सिद्धयोगी' शक्तियों का पुञ्ज होता है उनके रोम–रोम से तेज की धारायें निकलती रहती है सिद्धगुरु की शिष्यों पर किस प्रकार से कृपा होती है इसका उदाहरण गुरुदेव का दरबार है। जहाँ नित्य ही ऐसी अलौकिक क्रियायें एवं शक्ति जागरण के दृश्य दिखाई देते हैं। हर व्यक्ति शक्तिपात रहस्य को नहीं जानता इसलिये बहुत से अपने को विद्वान मानने वाले व्यक्ति इस प्रक्रिया को नकारा करते हैं। अस्तु कई साधकों पर गुरुदेव के लेख पढ़ने व प्रवचन सुनने मात्र से शक्तिपात होते देखा जाता है। सद्गुरु तत्त्व की उपासना ही ब्रह्मतत्व की उपासना है।

वर्तमान समय में कागज तथा मुद्रण प्रक्रिया आदि में भारी मँहगाई बढ़ गई है फिर भी पत्रिका शुल्क में इस वर्ष भी कोई वृद्धि नहीं की गयी है। गुरुदेव ने इसमें किसी प्रकार का विज्ञापन आदि न देने का जो संकल्प लिया है वह आज भी वैसा ही है। गुरु कृपा से निर्बाध रूप से प्रकाशन चल रहा है।

इस अवसर पर मैं अपने योग–वेत्ता विद्वानों एवं लेखकों का हृदय से आभारी हूँ। जिनके योग परक लेखों से इसकी शोभा व महत्ता बनी हुई है। योग पर लेख लिखना काफी दुष्कर कार्य है। अनुभवी एवं मननशील व्यक्ति ही योग परक लेख लिख सकता है।

मेरा अनुभवी गुरुभाई बहनों से निवेदन है कि वे उत्कृष्ट योगपरक लेख भेजते रहे यही उनकी ओर से गुरुचरणों में सुमनाञ्जलि होगी। सभी गुरुभाई बहिन अपना ग्राहक शुल्क जमा करा दें। ताकि समय पर पत्रिका मिल सके। अन्य को भी प्रेरणा दें।

आइये ! हम सब नव वर्ष में सुन्दर साधना, सेवा का भाव लेकर सत्कार्य में जुट जायें और आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के परम पावन प्राकट्य दिवस १५–१६–१७ अप्रैल श्री रामनवमी के शुभ अवसर को हर्षोल्लास के साथ मनायें।

जय सद्गुरुदेव की।

* * *

कहने वाले वक्ता के जीवन को मत देखो, वह जो कहता है, उस पर गौर करो।

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

ब्र० गोपालानन्द जी को शरण में लेना

गोपालानन्द जी का योग दीक्षा से पूर्व का नाम रामगोपाल था। वे अपनी जन्मभूमि हल्द्वानी (नैनीताल) में एक नामी वैद्य के रूप में चिकित्सा कार्य किया करते थे। उन्होंने हल्द्वानी में ही अनेक महात्माओं के दर्शन किये, जिनमें एक हठयोगी महात्मा भी थे। वे एक शक्ति सम्पन्न योगी थे। रामगोपाल उनका शिष्य बनना चाहते थे किन्तु उन्होंने रामगोपाल के संस्कारों को अपनी योगदृष्टि से जानकर उन्हें शिष्य बनाने से मना कर दिया और कहा–तुम्हारे संस्कार हमारे साथ नहीं हैं। अतः तुम हमारे शिष्य नहीं बन सकते। तुम्हारे गुरु पंजाब प्रान्त के रहने वाले एक लम्बे कद के और गौर वर्ण के ब्राह्मण हैं तथा उनका नाम पं० रामलाल है। तुम प्रतीक्षा करो, समय आने पर उन्हीं के द्वारा तुम्हारा कल्याण होगा।

रामगोपाल ने उनकी बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और किसी अन्य महात्मा से दीक्षा ले ली। वे महात्मा बड़े तपस्वी थे किन्तु अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के थे। रामगोपाल का मित्र प्रभु रामलाल जी का शिष्य था। वह प्रायः उनसे मिलता रहता था और प्रभुजी के योगैश्वर्य की चर्चा करता रहता था। जुलाई १९२६ में अपने उस मित्र की प्रेरणा से रामगोपाल प्रभु जी की शरण में सहारनपुर पहुँचे। उस वर्ष गुरु पूर्णिमा का पर्व सहारनपुर में मनाया जा रहा था। भक्त लोग मोर–मुकुट पीताम्बर पहनाकर भगवान श्री कृष्ण के रूप में प्रभु जी का षोडषोपचार पूजन कर रहे थे। यह देखकर रामगोपाल को बड़ी निराशा हुई और वे मन ही मन सोचने लगे कि मैं यहाँ व्यर्थ चला आया। यहाँ तो ढोंग ही ढोंग है। यहाँ कोई योगिराज नहीं है। सब चेला–चेली बनाने का चक्कर है। वे मन ही मन कुढ़ते हुए घोर निराशा लिये वहाँ से लौट गये। उनके मित्र ने उन्हें रोकने की चेष्टा की किन्तु वे रुके नहीं। अगले दिन उनका वही मित्र प्रभु जी की सर्वशक्तिमत्ता एवं अपार महिमा को दृष्टान्तों द्वारा समझाकर उन्हें दुबारा प्रभुजी के पास ले गया। प्रभु जी सफेद धोती कुर्ता पहने तथा सिर पर पगड़ी धारण किये अपने आसन पर विराजमान थे। रामगोपाल के मन में यद्यपि अभी भी सन्देह बना हुआ था, फिर भी अपने मित्र की देखा देखी उन्होंने भी प्रभु जी के चरणारविन्दों में सिर रखकर प्रणाम किया। मित्र ने उनका परिचय देते हुए उनके आने का कारण बताया। प्रभु जी ने स्नेह पूर्वक आर्शीवाद दिया और उनके मनोभावों को जानकर मधुर वाणी में बोले–बेटा ! तुम यहाँ व्यर्थ आये हो। तुम्हें तो ऐसे महात्मा के पास जाना चाहिये जिसकी लम्बी–लम्बी जटायें हों, शरीर पर राख पोती हुई हो और सामने धूनी रमायी हुई हो। हम तो एक साधारण से पंडित हैं, हमसे तुम्हें क्या मिलेगा? प्रभु जी के श्री मुख से अपने मन की बात सुनकर रामगोपाल आश्चर्य चकित हो गये। उनका सारा सन्देह जाता रहा और यह दृढ़ विश्वास हो गया कि– ये पंडित के वेश में अपने को छिपाये हुए

कोई सिद्ध योगिराज हैं। वे मन ही मन लज्जित होकर अत्यन्त विनीत भाव से बोले–प्रभो ! मैं अब आपके चरणारविन्दों को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी नहीं जाना चाहता हूँ। कृपापूर्वक मुझे शिष्यरूप में अपनाकर अनुग्रहीत कीजिये। रामगोपाल की इस विनम्रता को देखकर प्रभुजी का हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसाद के रूप में उन्हें चुटकी भर मिट्टी खाने को दी और ध्यान में बैठने को कहा। ज्यों ही वे ध्यान में बैठे तो प्रभु जी के मानस संकल्प से रामगोपाल का मन उसी क्षण एकाग्र हो गया और वे बहुत देर तक ध्यानस्थ रहे। ध्यान में उन्हें दिव्य लोक–लोकान्तरों के दर्शन के साथ–साथ प्रभु जी के अखण्ड मण्डलाकार व्यापक तेज का भी साक्षात्कार हो गया। जिससे उन्हें अपार आनन्द का अनुभव हुआ। रामगोपाल जी भगवान श्री कृष्ण में प्रेम रखते थे और उन्हीं के मन्त्र का जप किया करते थे। प्रभु जी ने उसी मन्त्र को जाग्रत (चैतन्य) कर दिया अपनी ओर से कोई नया मन्त्र नहीं दिया। उन्होंने उनका नाम गोपालानन्द रख दिया। अगले दिन गोपालानन्द जी श्री प्रभु जी से आज्ञा लेकर अपने घर लौट गये और वहाँ से अपने पूर्वगुरु के पास गये। वे अत्यन्त क्रोधी स्वाभाव के महात्मा थे। जब उन्हें यह पता चला कि रामगोपाल ने किसी अन्य गुरु से दीक्षा लेली है तो उन्होंने क्रोधावेश में उसे एक साथ पाँच शाप दे दिये–

१. तू जीवन भर रोगी रहेगा।
२. तेरी औषधियों में विष हो जायेगा।
३. तेरे सारे रोगी बिगड़ जायेंगे।
४. तू जीवन भर दरिद्र रहेगा।
५. अन्त में तुझे सद्गति प्राप्त नहीं होगी।

यह सुनकर गोपालानन्द जी को ऐसा लगा मानो उनके पैरों के नीचे से धरती खिसक गयी हो। वे भय से थर–थर काँपने लगे और आर्तभाव से प्रभु का स्मरण करते हुए अपने घर लौट गये। घर पहुँचकर उन्होंने प्रभुजी के चरणारविन्दों में पत्र लिखा और पूर्व गुरु द्वारा दिये गये शापों का उल्लेख करते हुए उन शापों से उनकी रक्षा करने की प्रार्थना की। प्रभुजी के पास पत्र पहुँचने में दो दिन लग गये। इस बीच महात्मा के शाप के फलस्वरूप गोपालानन्द जी की सब औषधियाँ जहरीली हो गई और उनके रोगियों की हालत खराब हो गई जिससे वे अत्यन्त भयभीत हो गये और असहाय होकर आर्तभाव से अनवरत श्री प्रभु जी को सहायता के लिये पुकारने लगे। चौथे दिन परम करुणासागर श्री प्रभु जी का पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था– चि० तुम्हारे पूर्व गुरु द्वारा दिये गये शापों का अब आगे से तुम पर कोई प्रभाव नही होगा। इस पत्र के मिलने के बाद वे पाँचों शाप वरदान में बदल जायेंगे।

१. तुम्हारे सभी रोगी स्वस्थ हो जायेंगे।
२. तुम्हारी औषधियों में अमृत का वास हो जायेगा।
३. तू आजीवन नीरोग रहेगा।

४. तू शीघ्र ही धनवान बन जायेगा।

५. देह त्याग के पश्चात् तुम्हें उत्तम लोक की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार परम योगेश्वर श्री प्रभु जी ने योगी की 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम' की सामर्थ्य का परिचय देते हुए गोपालानन्द जी को प्राप्त सभी शापों को अपने संकल्प मात्र से वरदान में परिवर्तित कर दिया और उनका वह कृपा पत्र प्राप्त होते ही गोपालानन्द जी का सारा संकट दूर हो गया। कुछ ही दिनों में उनका वैद्यगिरी का काम पहले से अधिक चमक गया और समाज में उनकी खूब प्रतिष्ठा होने लगी, इस घटना से उनकी प्रभु चरणारविन्दों में श्रद्धा बढ़ गई और वे निरन्तर उनका स्मरण करते हुए अपना व्यवसाय करते रहे तथा समय निकालकर सुबह शाम नियमित रूप से ध्यानाभ्यास भी किया करते थे। वे अग्रवाल वैश्य वर्ण के थे। अतः स्वाभाविक ही उनकी धन के प्रति विशेष आसक्ति थी।

उसे दूर करने के लिए प्रभु जी ने उन्हें ध्यान में सोना बनाने का नुस्खा बताया और कहा– 'यदि तुम फलाने व्यापारी के सहयोग से यह नुस्खा तैयार कर सको तो कुछ ही दिनों में मालामाल हो जाओगे'। उन्होंने किसी कागज पर वह नुस्खा नोट कर लिया। उधर उस व्यापारी को भी प्रभुजी ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा–कि वैद्य गोपालानन्द सोना बनाने का नुस्खा जानता है, किन्तु वह नुस्खा बहुत महंगा है। यदि तुम ३०–४० हजार रुपयें खर्च कर सकते हो तो तुम दोनों मिलकर नुस्खा तैयार कर लो।' प्रातः वह व्यापारी गोपालानन्द जी को ढूँढता हुआ उनके पास पहुँच गया। दोनों में मन्त्रणा हुई और उन्होंने यह निश्चय किया कि हम दोनों मिलकर शीघ्र ही यह नुस्खा तैयार कर लेंगे, उससे जो भी लाभ होगा उसमें हम दोनों बराबर के हिस्सेदार होगें।

व्यापारी के लौट जाने के बाद गोपालानन्द जी दिनभर सोना बनाने की कल्पना करते हुए बड़े प्रसन्न रहे और तरह–तरह की योजनाएं बनाते रहे। रात्रि को नियत समय पर वे ध्यानाभ्यास में बैठे तो बहुत समय बाद उनका मन एकाग्र हुआ, बाद में मन एकाग्र होते ही वे ध्यानस्थ हो गये। ध्यान में उन्हें प्रभुजी के दर्शन हुए और उन्होंने कहा–'हमने तुम्हें जो नुस्खा बताया है उसके द्वारा तुम धनी तो बन जाओगे पर उस धन से किसी प्रकार का सुखोपयोग नहीं कर सकोगे। तुम्हारा दो स्त्रियों से विवाह हो जायेगा और वे स्त्रियां तुम्हें इतना अधिक परेशान कर देंगी कि तुम एक क्षण भी सुख–चैन से नहीं रह सकोगे। परिणाम स्वरूप तुम रोगी बन जाओगे। इसके विपरीत यदि तुम गृहस्थी और धन का मोह त्यागकर महात्मा बन गये तो तुम समाधि के अनुपम आनन्द में मग्न रहा करोगे। तुम्हारी ध्यानस्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी और तुम तेज से परिपूरित होकर लोक लोकान्तरों के द्रष्टा तथा सामर्थ्यध्यान योगी बन जाओगे। तुम्हारे द्वारा हजारों अन्य लोगों का भी कल्याण होगा।' ध्यान में प्रभु जी के द्वारा की गई यह भविष्यवाणी सुनकर गोपालानन्द जी को ऐसा लगा कि मानो वे चिरनिद्रा से जाग गये

हों। धन के प्रति उनका मोह भंग हो गया। उन्होंने सोना बनाने के नुस्खे वाला कागज फाड़ डाला और सब कुछ त्यागकर प्रभु जी के पास अमृतसर पहुँच गये। वे प्रभुजी के चरणाविन्दों से लिपटकर बोले—प्रभो! आपने मेरी आँखें खोल दी हैं, अब कृपा करके मुझे सेवक के रूप में स्थायी तौर पर अपने चरण कमलों में रख लीजिये।

गोपालानन्द जी की विनम्रता को देखकर कल्याणघन श्री प्रभु जी ने उन्हें अपने पास ठहरा दिया और दो दिन पश्चात उन्हें उनके पिता जी की इच्छा के अनुसार पीले वस्त्र पहनाकर ब्रह्मचारी बना दिया। ब्र. गोपालानन्द जी श्री प्रभु जी के निर्देशन में कई घण्टे तक लगातार ध्यान में बैठा करते थे। श्री प्रभु कृपा से उनकी ध्यानस्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। ध्यान में वे प्रायः अपने इष्ट श्री कृष्ण में या श्री गणपति में लय रहा करते थे अथवा लोक लोकान्तरों के दर्शन किया करते थे। अपने गुरुदेव श्री प्रभु जी को वे कभी श्री कृष्ण रूप में, कभी भगवान सदाशिव के रूप में कभी गणपति के रूप में और कभी अखण्ड मण्डलाकार व्यापक तेज के रूप में देखा करते थे।

ध्यान में उन्हें कई बार गोलोक धाम के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ और वे यह देखकर आश्चर्य चकित हो जाया करते थे कि वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, नतमस्तक होकर प्रभु जी का पूजन कर रहे हैं एवं भावविभोर होकर उनकी आरती उतार रहे हैं। श्री प्रभुजी उन्हें ध्यान में ही सब प्रकार के आदेश दिया करते थे और योगविद्या के सभी गूढ़ रहस्यों को उन्हें ध्यानावस्था में समझा दिया करते थे। जब भी उन्हें कोई जिज्ञासा होती वे उसी क्षण ध्यान में बैठ जाते थे श्री प्रभु जी तत्क्षण ध्यान में प्रकट होकर उनके प्रश्नों का उत्तर दे देते थे। कुछ वर्ष पश्चात् प्रभु जी ने उन्हें योग प्रचारार्थ लाहौर भेज दिया। वहाँ उन्होंने 'गोविन्द जय जय गोपाल जय जय, राधारमण हरि गोविन्द जय जय' इस संकीर्त्तन को कराना आरम्भ किया। वहाँ इस संकीर्त्तन का बड़े जोरों से प्रचार हुआ। संकीर्त्तन में अनेकों व्यक्ति एक साथ ध्यानस्थ हो जाया करते थे।

(क्रमशः)

विपत्ति आने पर यदि तुम उसको सहन करने की शक्ति रखते हो तो घबराओ मत, अपना बल लगाकर उसे निकाल दो और यदि तुम्हारी ताकत उसे नष्ट नहीं कर सकती तब भी रोओ मत ! जरूर एक बार विपत्ति तुम्हें परेशान करना चाहेगी, परन्तु फिर आप ही नष्ट हो जायेगी।

अध्यात्म का गणितीय सूत्र

डा. ऋषिराम शर्मा

डा० ऋषिराम शर्मा आनन्दकन्द गुरुदेव के लाडले बच्चों में से एक हैं। १९७१-७२ के आसपास कई वर्षों तक काशी में इन्हीं के यहाँ कार्यक्रम होता था। इन्हीं दिनों में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में गुरुदेव के व्याख्यान हर वर्ष रखा जाता था। परिणाम स्वरूप कई संस्कारी साधक गुरुदेव के श्री चरणों से जुड़े तथा अपने जीवन को दिव्यता की ओर ले जा रहे हैं। पढ़िये, इनके विद्वतापूर्ण लेख को।

—सम्पादक

यद्यपि अध्यात्म एक जटिल विषय है और वह बुद्धि की परिधि से बाहर है, तथापि अनुभव तथा अनुमान के आधार पर समझने का प्रयास किया जा सकता है। इस विषय में सर्वोपरि भूमिका शास्त्रों तथा महापुरुषों के उपदेशों की है। इस दिशा में मेरा विशेष अध्ययन नहीं है किन्तु मेरे पास अपने गुरुदेव के उपदेशों के संस्कार हैं। बस इसी विश्वास के आधार पर कुछ लिख रहा हूँ।

अध्यात्म को समझने के लिए तथा परमात्मा के स्वरूप में अपने जीवात्मा के स्वरूप को लीन करने के लिए निम्नलिखित गणितीय सूत्र का संक्षेप में वर्णन करना चाहता हूँ।

एस = जी (वाई+आई)/डब्लू $\left[S = \frac{G(Y+I)}{W} \right]$

इस सूत्र में एस = अध्यात्म सिद्धि, जी = गुरुकृपा, वाई = योग साधना, आई = पूर्व जन्मों के संस्कार, तथा डब्लू = सांसारिक इच्छायें को प्रदर्शित करते हैं। सूत्र के सभी अवयव श्रद्धा के फलन हैं। हम क्रमशः इन पर विचार-मंथन करेंगे।

१. एस : अध्यात्म का स्वरूप

अध्यात्म का शाब्दिक अर्थ है **''आत्मा में स्थिति''**। वास्तव में आत्मा तथा परमात्मा एक ही तत्व के प्रतीक हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में स्वीकार किया है कि—

उपद्रष्टा अनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वर :।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहे अस्मिन पुरुषः परः।।

अर्थात् इस शरीर में जो आत्मा के रूप में विद्यमान है वही परमात्मा है तथा उसे परम पुरुष भी कहा जाता है। इसी को महेश्वर समझो क्योंकि वह चार रूपों में कार्यरत है। प्रथम तो वह **''सर्वसाक्षी''** है। हमारा मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ जो भी कर्म करती हैं, आत्मा सभी का साक्षी है। तनिक विचार करो कि स्वप्नावस्था में जागृतावस्था का ज्ञान नहीं था अर्थात् जागृत का मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियाँ स्वप्न के मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से भिन्न थे, किन्तु इस भिन्नता का ज्ञान जिसे है, वही आत्मा है, वही दोनों अवस्थाओं का साक्षी है। तभी तो हम स्वप्न से जागने के

बाद कहते हैं कि स्वप्नावस्था में जागृतावस्था मिथ्या थी और जागृतावस्था में स्वप्नावस्था मिथ्या है। यह तभी संभव है जब दोनों अवस्थाओं का ज्ञाता एक हो। इसी तथ्य के आधार पर कर्माशय अपना कार्य करता है, क्योंकि आत्मारूप परमात्मा हमारे सभी कर्मों का साक्षी है और वही प्रत्येक योनि के प्रारब्धों का निर्धारण करता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि **''सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः''** अर्थात् कर्माशय के कर्मसंस्कारों में जो कर्म फल देने के लिए परिपक्व हो जाते हैं उन्हीं के आधार पर परमात्मा की योगमाया जीवों की योनि, उस योनि की आयु तथा उस योनि में प्राप्त होने वाले सुख–दुःख के भोगों का निर्धारण करती है। परमात्मा के इसी साक्षित्व के कारण शास्त्र निश्चय करते हैं कि **''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्''** अर्थात् अहंकार द्वारा किये गये पुण्यकर्म तथा पापकर्म का भुगतान अवश्य ही करना पड़ता है।

परमात्मा का दूसरा रूप है कि वह **''अनुमन्ता''** है, यानि राक्षसों तथा देवताओं को अपने–अपने अहंकार के अनुसार पुरुषार्थ करने की अनुमति देता है। सभी जीवात्मा पुरुषार्थ करने में स्वतन्त्र हैं। गीता में भी भगवान स्पष्ट कहते हैं कि **''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''** अर्थात जीव को कर्म करने में पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु फल तो प्रारब्ध के आधीन है। यही कारण है कि असुर भी तपस्यारूपी कर्म के द्वारा महान शक्तियाँ, सिद्धियाँ तथा देवताओं के वरदान प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी अत्याचारों के फलस्वरूप नाश को प्राप्त होते हैं।

परमात्मा का तीसरा रूप है **''भर्ता''**, अर्थात् परमात्मा पक्षपातरहित होकर सभी का भरण तथा पोषण करते हैं। सभी शरीरों में मांस, मज्जा, अस्थि, रक्तसंचार आदि क्रियायें समानरूप से होती रहती हैं, सभी अपने–अपने पुरुषार्थ के द्वारा परमात्मा से ही बल तथा शक्ति प्राप्त करते हैं।

परमात्मा का चतुर्थ रूप है **''भोक्ता''**। इसी को जीवात्मा कहा जाता है, क्योंकि अज्ञान के वशीभूत भ्रान्तिजन्य सुख तथा दुख के भोगों को भोगता है। भगवान श्रीकृष्ण समझाते हैं कि–

''कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते।
पुरुषः सुखदुखानाम् भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते।।

अर्थात् परमात्मा की योगमाया के द्वारा सृष्टि का संचालन होता है फिर भी माया की आवरणशक्ति के वशीभूत जीवात्मा योगमाया की मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ आदि दर्शनशक्तियों के साथ एकात्मता के कारण भोक्ता बन जाता है। इस जीवभाव को समाप्त करने का एकमात्र उपाय है इस एकात्मता को समाप्त करना। इस अविद्याजनित एकात्मता के नष्ट होते ही अध्यात्म का साक्षात्कार होता है। भगवान पतन्जलि कहते हैं कि

''तदा दृष्टुर्स्वरूपे अवस्थानम्''

अर्थात जैसे ही एकात्मता की प्रतीक चित्तवृतियों का पूर्ण निरोध हो जाता है वैसे ही सर्वसाक्षी परमात्मा अपने सत्य स्वरूप में दिखाई देने लगता है। यही अध्यात्म की स्थिति है।

अब विचारणीय विषय यह है कि इस स्थिति की क्या विशेषता तथा पहचान है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? अध्यात्म का सम्बंध परमात्मा के स्वरूप से है जोकि व्यापकता, ज्ञानत्व तथा शक्तित्व की दृष्टि से अनन्त है। अतः उसको प्राप्त करने का ऐसा कोई उपाय नहीं हो सकता जिसमें अनन्तता की उपलब्धि का गुण न हो। एस→∞ तभी संभव है जबकि या तो डब्लू→0 अथवा जी→∞ या वाई + आई→∞ हो। इन संभावनाओं पर विचार करने से पूर्व अध्यात्म के अनन्त स्वरूप को भी समझ लिया जाय। गीता में जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि–

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।
नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।।
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वाद् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके तत्।।
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तद् ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।

अर्थात् परमात्मा समस्त प्राणियों में आत्मतत्व के रूप में विद्यमान है, वही सभी का आदि, मध्य तथा अन्त है, यानि सर्वव्याप्त है। उसके ऐश्वर्य का विस्तार अनन्त है, नाम तथा रूप का वर्णन तो कथनमात्र के लिए है, क्योंकि समस्त सृष्टि तथा ब्रह्माण्ड उस परमात्मा में समाहित है। चर तथा अचर सभी के अन्दर तथा बाहर वही परमात्मा व्याप्त है, अति सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियाँ उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं कर सकती हैं, वही सब का भरण–पोषण करता है, उत्पत्ति करता है तथा शरीरों का विनाश भी करता है। परमात्मा की अनन्तता तथा सर्वव्यापकता को समझाने के लिए मैं एक उदाहरण देता हूँ। हम सिनेमा घर में परदे पर चल–चित्र फिल्म देखते हैं, उसमें लड़ाई, विस्फोट, दौड़–भाग, मारपीट आदि दृश्य देखते हैं, किन्तु क्या आपने विचार किया है कि परदे पर सम्पूर्ण दृश्य–जगत प्रकाश की किरणों का रूपान्तर मात्र है, उसकी गति भी भ्रान्तिमात्र है जोकि प्रोजेक्टर की गति के कारण दिखाई देती है। प्रोजेक्टर के रुक जाने पर क्रियात्मक दृश्य समाप्त हो जाता है। प्रोजेक्टर में लगी रील को निकाल दिया जाय तो प्रकाश की किरणें ही परदे पर दिखाई देंगी, जो पूर्व में दृश्यों के रूप में थी। किन्तु ऐसा न करने पर किसी को किरणें न दिखाई देकर दृश्य दिखाई देते हैं। ठीक इसी प्रकार मनरूपी प्रोजेक्टर में संस्काररूपी वृत्तियों की रील लगी है जो सर्वव्याप्त परमात्मा की चेतनारूपी प्रकाशकिरणों के माध्यम से इन्द्रियों रूपी परदे पर संसार के रूप में दिखाई दे रही है। परमात्मा के इस सर्वव्यापक, प्रकाश को देखने के लिए मनरूपी प्रोजेक्टर को रोक कर उसमें से

चित्तवृतियों की रील को निकालना होगा। इसी को अध्यात्म का स्वरूप कहते हैं। इसी को जीवात्मा का परमात्मा के स्वरूप में विलय कहते हैं, जो कि अज्ञान का नाश होने पर स्वयं पर प्रकट होता है।

२. डब्लु : सांसारिक इच्छायें

सांसारिक इच्छायें ही परमात्मा के स्वरूप पर आवरण डालकर उसे जीवात्मा के रूप में प्रदर्शित करती हैं। शास्त्रों का वचन है कि

यादृशी वासनामूले वर्तते जीवसंगिनी।
तादृशं वहत्ते जन्तुः कृत्याकृत्यविभौभ्रमम्।।
स्वभावजेन तु कौन्तेय निवद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेन्छति यद्मोहात् करिस्ये अवशोऽपितत्।।
संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेशादिसंकुलः
स्वकाले सत्यवत् भाति प्रबोधे असत्वत् भवेत्।।

अर्थात् जीवात्माओं के अन्तःकरण में जिस प्रकार की वासनायें उभरती है। उनके अनुसार ही उसका जन्ममृत्यु का आवागमन तथा भोग उपस्थित होते रहते हैं। इसी कारण कर्मसंस्कारों से उत्पन्न अपने स्वभाव के आधीन जीवात्मा व्यवहार करती है। अपने विशुद्ध चैतन्यस्वरूप से अपरिचित चित्तवृतियों के साथ एकाकार जीवात्मा कर्मबन्धन में विवशता का अनुभव करती है। जिस प्रकार निद्रावरण में स्वप्न–जगत सत्य तथा जागृत जगत मिथ्या हो जाता है उसी प्रकार सांसारिक इच्छाओं के अविद्यावरण में संसार सत्य तथा परमात्मा का सर्वव्यापी स्वरूप मिथ्या भासित होता है। अतः जैसे ही डब्लू→0, एस→∞, यानि सांसारिक इच्छाओं का नितान्त अभाव ही अध्यात्म है। हमारे महापुरुष और परमात्मा के अवतार इसके उदाहरण हैं, जैसे कि भगवान श्रीकृष्ण, भगवान राम आदि अवतार तथा महर्षि पतंजलि, महर्षि व्यास, महर्षि वशिष्ठ, कपिल मुनि, अगस्त मुनि आदि महापुरुष अध्यात्म की स्थिति के प्रतीक हैं। किन्तु सांसारिक इच्छाओं की नितान्त अभावावस्था क्रियासाध्य नहीं है, क्योंकि कर्म अहंकार के द्वारा किये जाते हैं और अहंकार अज्ञानमूलक है। अतः पुरुषार्थ के बल पर डब्लू→0 संभव नहीं। इसका निराकरण केवल जी→∞ से ही संभव है, क्योंकि वाई तथा आई तो अनन्त हो नहीं सकते। सभी योग–साधनाओं में अहंकार विद्यमान रहता है और पूर्व जन्मों के संस्कार भी अहंकार की परिधि के अन्तर्गत है। मेरा निष्कर्ष तथा निश्चय यही है कि गुरुकृपा के बिना किसी भी जीवात्मा को परमात्मा के स्वरूप की प्राप्ति संभव नहीं। ईश्वर के भक्तों के लिए ईश्वर स्वयं गुरु बन जाते हैं, क्योंकि "**गुरुणामपि गुरुः कालेनावच्छेदात्**" अर्थात् काल की सीमा से परे होने के कारण ईश्वर गुरुओं का भी गुरु है।

३. वाई : योग-साधना

"**योग-साधना**" तथा पतंजलि का "**क्रियायोग**" दोनों का एक ही लक्ष्य है और वह है

अपने को गुरुकृपा का अधिकारी बनाना। जैसे कोई बीज वृक्ष बनकर तब तक फलित नहीं होता जब तक उसे अंकुरित होने के लिए उपजाऊ मिट्टी, खाद तथा पानी की व्यवस्था नहीं हो जाती है। इसी प्रकार गुरुकृपा भी तभी फलित होती है जब शिष्य अपने को उसका अधिकारी बना लेता है। जिस प्रकार छिद्र वाले घट में चाहें जितना जल भर दिया जाए, वह स्वतः खाली हो जाता है, उसी प्रकार यदि शिष्य के मन में माया के अहंकार, मोह, ईर्ष्या तथा लोभ आदि विकार, काम तथा क्रोध के विकार गुप्त अथवा सक्रिय रहते हैं, तब तक गुरुकृपा का लाभ प्राप्त नहीं होता। अतः योग–साधना के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध करना आवश्यक है।

वस्तुतः योग–साधना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा आत्मा तथा चित्तवृतियों की एकरूपता को प्रथक–प्रथक किया जाता है। इस प्रक्रिया में अन्तःकरण में तीन रूपान्तर परिणामों का प्रादुर्भाव होता है। वह परिणाम हैं एकाग्रता परिणाम, समाधिपरिणाम तथा निरोध परिणाम। इन परिणामों के फलस्वरूप प्रज्ञा की सात प्रान्तभूमि प्रकाशित होती है। अन्तिम प्रान्तभूमि ऋतम्भरा प्रज्ञा है, जिसके द्वारा प्रथकता का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और परमात्मा के व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप की अनुभूति होती है। इन स्थितियों से गुजरने में अनेक अन्तराय आते हैं जो केवल गुरुकृपा से निष्क्रिय तथा प्रभावहीन होते हैं।

योग–साधना के अनेक रूप हैं, जैसे कि भक्तियोग, कर्मयोग, क्रियायोग, सांख्ययोग, हठयोग, लययोग तथा अष्टांगयोग आदि । सभी में मनोवृत्तियों का निरोध करके स्वरूपशून्य होकर अपने मन तथा बुद्धि को परमात्मा के स्वरुप में विलय करना पड़ता है। सब का अन्तिम लक्ष्य–केन्द्र एक है, केवल वहाँ तक पहुँचने के रास्ते अलग–अगल हैं। इन सब का अलग–अलग वर्णन करना या समझाने का प्रयास करना इस लेख में संभव नहीं लगता, वैसे शास्त्रों में इनका विस्तार से वर्णन मिल जायगा। महर्षि पतंजलि ने स्पष्ट संकेत दिया है कि

योगांगानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि नामक आठ योग के अंगों की साधना के परिणामस्वरूप जब अन्तःकरण की अशुद्धि का नाश हो जाता है तब स्वतः ही ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो जाता है जिसके द्वारा जीवभाव रूपी अज्ञान के अन्धकार का नाश हो जाता है और अध्यात्म में स्थिति हो जाती है। विस्तार में न जाकर मैं आपको एक आसान सी योगसाधना बताता हूँ कि–

तं यथा यथोपासते तदेव भवति।
सत्यज्ञानमनन्तं ब्रह्म।
योगात् स्वाध्यायमानयेत स्वाध्यायात् योगमासीत।
स्वध्याययोगसम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् जो भी भावना आपके मन में उदय होती हैं उसकी तरंगें समस्त ब्रह्माण्ड में पहुँच जाती हैं तथा परमात्मा ही सत्यज्ञानस्वरूप है और उसमें ज्ञानत्व की अनन्त शक्ति है। अतः

तुम्हारी भावना की तरंगें भी उसके चिदाकाशव्याप्त चित्त में पहुँच जाती है। महर्षि पतंजलि भी परमात्मा को **"निरतिशयं तत्र सर्वज्ञबीजम्"** यानि जीवात्माओं की प्रत्येक भावतरंग के पूर्ण ज्ञाता हैं तथा वही स्मृति तथा विस्मृति के विकारों की पूर्णशून्यता हैं इस कारण जो जो परमात्मा को जिस जिस भाव से भजता है, परमात्मा उसी रूप में प्रकट होता है। अतः परमात्मा के सत्यस्वरूप की उपलब्धि का सरलतम उपाय या साधना है मन्त्रयोग यानि स्वाध्याय तथा ध्यानयोग यानि अष्टांगयोग का आश्रय लिया जाय। दोनों साधनायें एक–दूसरे की पूरक हैं, क्योंकि मन्त्रजप में तीन असीम तथा अनन्त शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं, प्रथम तो गुरुप्रदत्त गुरुकृपा की अनन्तशक्ति सभी विघ्न–बाधाओं तथा अन्तरायों का नाश करती रहती हैं, द्वितीय शक्ति आराध्यदेव की है जिसके भावनात्मक स्मरणमात्र से उसकी ऐश्वर्यमयी अनन्तशक्ति शनैः शनैः साधक के अन्तःकरण में प्रवेश करती जाती है और यह स्वभाविक प्रक्रिया है तथा तीसरी शक्ति उन महासिद्धों की है जो उस मन्त्र के माध्यम से सिद्धावस्था को प्राप्त किये हैं। मुझे काशी के महान सन्त सूखा बाबा के दर्शन हुए और उन्होंने अपनी पचास वर्ष की तपस्या का फल यही बताया था कि काशी के आकाशमंडल में भ्रमण करने वाले सिद्धों की कृपादृष्टि मुझे यहाँ गंगा किनारे नगवाघाट पर प्राप्त हुई हैं। इस मन्त्रयोग की साधना से स्वतः अष्टांगयोग की साधना आरंभ हो जाती है और परिणामस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है किन्तु यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि

"सः तु चिरकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितः दृढभूमि"
प्रयत्नात् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिम्।।

अर्थात् योगसाधना चिरकाल तक निरन्तर तथा अपार श्रद्धापूर्वक करने पर ही माया के विकारों से मुक्ति तथा पापरहित चित्त का प्रादुर्भाव होता है। इसलिए जो जीवात्मायें निरन्तर प्रयासरत रहकर अनेक जन्मजन्मान्तर तक योग–साधना करते हैं, वही इस परम गति को प्राप्त करतें हैं। इसका भी विशेष ध्यान रखा जाय कि सूत्र के सभी अवयव श्रद्धा के फलन हैं। **"श्रद्धामयोऽयम् पुरुषः यो यत् श्रद्धा सः एव सः"** यानि अधिकारिता की पहचान केवल श्रद्धा है।

४. आई : पूर्व-जन्मों की योगसाधना के संस्कार

यद्यपि पूर्व–जन्मों की स्मृति न रहने कारण इसका विश्लेषण कठिन है, तथापि हमारे शास्त्र साक्षी हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि–

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवा योगीनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म् यदीदृशम्।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।

अर्थात् जो जीवात्मा अध्यात्म की प्राप्ति के लिए योग–साधना में रत रहते हैं किन्तु सिद्धि से पूर्व ही मृत्यु हो जाती है, वह स्वर्गादि लोकों के सुख भोगने के बाद ऐसे परिवारों में जन्म लेते हैं जहाँ सुख–समृद्धि के साथ योग–साधना के अनुकूल शुद्ध वातावरण भी मिलता है। कुछ जीवों को तो परम सौभाग्य का ऐसा दुर्लभ वातावरण मिलता है कि उनके माता –पिता स्वयं योगी होते हैं और उनसे उन्हें सद्गुरु जैसा गुरुकृपा का लाभ भी मिलता है। इस स्थिति में उन्हें पूर्व जन्मों में विकसित योगोन्मुख बुद्धि का लाभ मिल जाता है जिससे उन्हें सुगमता से अध्यात्मसिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस के अतिरिक्त इस प्रकार के पूर्व जन्मों के दिव्य संस्कारों के परिणाम स्वरूप अनायास सद्गुरु का शक्तिपात प्राप्त हो जाता है और प्रत्यक्ष में योगसाधना के बिना ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसके अनेक उदाहरण हमने अपने गुरुमुख से सुने हैं। भ्रष्ट आचरण वाली रामरती को आनन्दकन्द महाप्रभु जी ने अनायास बिना योग–साधना के सिद्धावस्था प्रदान कर दी, महावतार बाबा जी ने श्यामाचरण लहरी को अनायास सात दिन की समाधि प्रदान कर अध्यात्मसिद्धि प्रदान की तभी तो काशी के महासिद्ध तैलंगस्वामी श्यामालहरी के गंगास्नान करने आने पर तुरन्त गंगाजल में से प्रकट होकर आनन्दविभोर होकर आलंगन करते थे और कहते थे कि मैंने अनेक जन्मों की कठिन योग–साधना के बाद जो स्थिति प्राप्त की वह इसके गुरुदेव ने इसे सात दिन की समाधि में प्रदान कर दी। यह सब पूर्वजन्मों के संस्कारों का ही परिणाम है, अन्यथा महापुरुषों पर पक्षपात का आरोप लग जायेगा। भगवान पतंजलि जी ने भी कहा है कि **''भवप्रत्ययः विदेहप्रकृतिलयानाम्''** अर्थात् जो प्राणी पूर्व जन्मों की योग–साधना के द्वारा विदेहावस्था तथा मन–बुद्धि रूपी प्रकृति को परमात्मा के स्वभाव में विलीनता को प्राप्त कर लेते हैं, वह जन्म लेने मात्र से अध्यात्मसिद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। महर्षि व्यास, सुखदेव जी, अष्टावक्र जी, कपिल मुनि आदि महापुरुष जन्म से ही अध्यात्मस्वरूप में लीन थे।

५. जी : गुरुकृपा

जैसा मैंने उपरोक्त में वर्णन किया है कि गुरुकृपा के बिना कोई भी जीवात्मा अध्यात्मस्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकती। वास्तव में सद्गुरुदेव ही विशुद्ध ब्रह्म हैं। इसीलिए कहा गया है कि **''भूतेशप्रणम्यं अनन्तस्वरूपं भक्तस्य त्राणं गुरुदेव नमामि''** अर्थात् सद्गुरुदेव ओंकारस्वरूप वह अनन्त सत्ता है जिससे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का प्रादुर्भाव हुआ है। इसी कारण शास्त्र प्रतिपादित करते हैं कि **''यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ''** अर्थात् अध्यात्म का स्वरूप उसी को प्राप्त होता है जिसके हृदय में परमात्मा के प्रति अगाध पराभक्ति

है और जैसी भक्ति परमात्मा में है, वैसी ही भक्ति गुरुदेव में भी है। मेरे जीवन में ऐसी दो घटनायें हैं जिससे मेरा विश्वास अटूट हुआ है। एक बार में अपने गुरुभाई सूरज तथा लक्ष्मी के साथ १९६० में प्रयाग के माघ मेला में सिद्धपुरुष देवरा बाबा के दर्शन करने गया तो बाबाजी ने आश्चर्यचकित ढंग से हमें अपने पास बुलाया और वार्ता करने लगे, तभी महाप्रभुजी का जिक्र हुआ तो बाबा जी की अश्रुधारा बहने लगी । हमने पूछा कि महाराज आप उन्हें जानते हैं तो कहने लगे कि "वह तो विशुद्ध ब्रह्म हैं, जिस पर हाथ रख दें, वह सिद्ध पुरुष बन जाय।" दूसरी घटना सन्यासी महात्मा सच्चिदानन्द महाराज की है जो कि ८० वर्ष के सन्तपुरुष हैं जिनका काशी में नगवा घाट पर मठ है। उनसे भाई विष्णुदत्त शर्मा के साथ बातचीत हुई थी तो महाप्रभु जी का नाम सुनते ही भावविभोर हो गये, अश्रुपूरित होने लगे। हमने पूछा कि महाराज आप उन्हें जानते हैं तो कहने लगे कि जब मैं ५० वर्ष पूर्व उनके चरणों में था तो पहचान नहीं पाया था और उनके चरण छोड़कर सन्यासी हो गया, अनेक वर्ष हिमालय में साधना की, विचरण करते हुए काशी में वास किया । यहाँ साधना के फलस्वरूप मुझे उनका दर्शन होने लगा, असीम कृपा का अनुभव हुआ, दिवाल में से प्रकट होकर वैसे ही आते और चले जाते हैं, अब पता चला कि वह विशुद्ध ब्रह्म हैं। गुरुदेव हमारे निवास पर काशी में प्रोग्राम देने आये तो हमने उनको सूचित कर दिया । जब गुरुदेव गंगास्नान गये थे, तभी आ गये। हमारी धर्मपत्नी ने बताया कि महाप्रभु जी के चित्र को देखते ही भावविभोर हो गये, दण्डवत प्रणाम किया और गुरुदेव जी से चिपट गये। बाद में हमने गुरुदेव जी से पूछा तब गुरुजी ने बताया कि यह महाप्रभुजी का ऋषिकेश आश्रम में भोजन बनाते थे और अचानक गायब हो गये थे। विचारणीय विषय यह है कि बिना सत्यता के ५० वर्ष के अन्तराल के बाद सन्यासी का अहंकार छोड़कर कोई भी प्राणी नतमस्तक होकर इस तरह अश्रुपात नहीं कर सकता।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि गुरुकृपा पर कुछ भी लिखना या गुरुकृपा के रहस्यों का उद्बोधन कराना मेरी बुद्धि की सीमा से परे है, मैं तो केवल अपने गुरुदेव के चरणों में अपने भाव अर्पण कर उन्हें साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

❋ ❋ ❋

सद्गुण से सुख होता है और दुर्गुण से दुःख। चित्त की शान्ति ही सुख है और चित्त की अशान्ति ही दुःख है, अतएव प्रत्येक उपाय से अपने दुर्गुणों को निकालकर सद्गुणों को धारण करो। इसी से सच्ची शान्ति मिलेगी।

श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमोनमः

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

१. कालप्रवाहोऽस्त्यविरामगतिकः, प्रवाहमवरोधयितुं क ईशः।
कोऽस्य प्रभावादभवन्न बद्धः, यतिर्भूपतिर्वाऽस्तु स्वयं सृजांपतिः।।

२. सर्वे वयं कालक्रमेण बद्धाः, भुञ्जामहे प्राक्तन कर्मभोगान्।
जनुर्निजं शैशवतो निरीक्ष्य, पश्याम अद्यापि सुदीर्घकालतः।।

३. किं किं कृतं, प्राप्तमथापि किंवा, यथार्थतः किं करणीयमस्ति।
नवे वत्सरे किं परिपूरणीयम्, बुद्ध्या स्वयाऽस्तीति विचरणीयम्।।

४. यतोऽस्ति भिन्ना हि रुचिः समेषाम्, स्वभावतश्चापि पृथक्पृथङ्नरः।
यद्यन्तु यस्मै रुचितः स्वभावतः, तदेव तस्मै रुचिरश्च रोचते।।

५. यतोनवाब्दः पुनरागतोऽस्ति, अतः कामयेऽहं भवते भवेशात्।
नीरुक्तनुः, स्वस्थमनोऽपि सद्धनम्, पायादपायान्तु भवात्मजोऽपि।।

(1) The flow of the Time is incessantly moving. None is able to obstruct its motion.
Who is he who has not been tied up by its sway. May he be an ascetic, a monarch or even the Lord of Creation.

(2) Bound are all we with the Times movement. Go on getting fruits of our own actions. Right from our infancy watching we are. So long a time till today the same additions & Subtractions.

(3) What have we done or have we obtained, what is really achievable here virtually.
Whateles remains for Completion in the New year, Own self has to fonder over it indiscriminately.

(4) The likings or dislikings of all differ, Different are the demeanours of every human.
Whatever one owns as sacramental taste, for him only that is pleasing & pleasant one.

(5) Since the year New has come again. So, I beseach from Lord Shiva.
Body bereft of ailments, soundmind and good Wealth, And the safe life from Ganesh too, the Son of Lord Shiva.

हिन्दी रूपान्तरण

१. समय का प्रवाह अबाधगति से चल रहा है। कोई भी शक्ति इस गति को रोकने में

समर्थ नहीं है। इसके प्रभाव से कौन बद्ध नहीं है ? चाहे कोई सन्यासी हो, राजा हो अथवा स्वयं ब्रह्माजी ही हों ?

२. हम सब काल की गति से बँधे हुये हैं। अपने प्राक्तन कर्मों को भोग रहे हैं। अपने शैशवावस्था से काल क्रम को देख रहे हैं। दीर्घकाल से प्रवाहमान कालचक्र को आज भी देख रहे हैं।

३. हमने आज तक क्या–क्या किया है और क्या–क्या पाया है ? यथार्थ में जीवन में हमें क्या करना चाहिये, नूतन वर्ष में अधूरे कार्यों को पूरा करें, यही सब बातें हमें अपने बुद्धि में विचारना है।

४. चूँकि सभी की रुचि भिन्न–भिन्न होती है, स्वभाव से ही हर व्यक्ति भिन्न है। रुचि एवं स्वभाव से मनुष्य जिस वस्तु को पसन्द करता है वही उसे अच्छा लगता है।

५. नववर्ष पुनः आ गया है अतः हम भगवान शिव तथा उनके पुत्र विनायक से निरोग शरीर, स्वस्थ मन, पर्याप्त धन एवं सुरक्षित जीवन की कामना करते हैं।

❊ ❊ ❊

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं० ४

१. प्रकाशन का स्थान	— श्री सिद्धगुफा, सवाई, आगरा (उ०प्र०)
२. प्रकाशन का अवधिक्रम	— मासिक
३. मुद्रक का नाम	— विनय गजानन शर्मा
राष्ट्रीयता	— भारतीय
पता	— कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज, आगरा।
४. प्रकाशक का नाम	— विजय गजानन शर्मा कृते सिद्धगुफा प्रकाशन, सवाई, आगरा।
राष्ट्रीयता	— भारतीय
पता	— श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा)
५. संपादक का नाम	— आचार्य ब्र. दाराताल शर्मा
राष्ट्रीयता	— भारतीय
पता	— श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (आगरा)
६. स्वत्वाधिकारी	— ब्रह्मलीन अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

मैं विजय गजानन शर्मा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

दिनांक—२८ फरवरी २००५

कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन

विजय गजानन शर्मा

दिखा दो रास्ता मुझको......

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

दिखादो रास्ता मुझको, शरण में मैं तुम्हारी हूँ
कठिन पथ योग का प्रभुजी ! मैं साधक अति अनाड़ी हूँ

जन्म पर जन्म लेकर भी मुक्ति का मन नहीं बनता
सँभल कर फिर बिगड़ जाए, स्वाभाविक दोष इस मन का
इसी मन के नियन्त्रण को, मिटाकर मोह अर्जुन का
सिखाया योग तुमने, खींचकर रथ उसके जीवन का
कभी बन पाऊँ मैं योगी, न इतना पुण्यशाली हूँ।

सैंकड़ों मित्र हैं अपने न देखा स्वच्छ कोई दिल का
रात-दिन लोग मरते हैं भरोसा है नहीं कल का
चतुर सेवक वो विकट था, वचन माँगा तो तरने का
न माँगी उसने उतराई, बन गया दास चरणों का
नहीं निष्काम सेवक मैं, रहा बन कर व्यापारी हूँ।

सुना मानव जन्म दुर्लभ, हमें संसार की चिन्ता
नहीं सन्तोष का सुख है, निरन्तर बढ़ रही ममता
अभी तक ले रहे हम तुच्छ आनन्द घोर विषयों का
योग की बात क्या समझें, किया नहीं ध्यान ऋषियों का
घिरा हूँ घोर माया में, धरा पर बोझ भारी हूँ।

करूँ किसका भरोसा कौन है प्रभु आपके जैसा
जो थामें डोर मेरी को, साहसी कौन तुम जैसा
विधाता की बड़ी किरपा, मिले गुरु सर्व हितकारी
जगाते नींद से पल-पल, मिटाते वासना सारी
मुझे इतना ही सुख काफी, मैं दृष्टि में तुम्हारी हूँ।
दिखादो रास्ता........

मिला जिसको भरोसा आपका, वह धन्य भागी है
थपेड़े सैकड़ों खाकर बना, वह सच्चा त्यागी है
पड़े जो चरण कमलों में, तुम्हारी आज्ञा में बँधकर
रतन 'सिद्धयोग धन' पाकर, हुऐ वो अधम भी ईश्वर
मुझे भी प्राप्त हो वह धन, न इतना आज्ञाकारी हूँ।

नहीं कुछ हाथ में पूरे, नहीं कुछ भी मैं कर सकता
तुम्हारा जगत, तुम ही सब जगह, कर्त्ता तुम्हीं भर्त्ता
किया अधिकार तुम पर, इसलिए ही नीच कहलाया
गिरा रौरव नरक में, भोग सुख ने जब भी भरमाया
मैं लाया भेंट तुमको आज अपनी कमियाँ सारी हूँ।

मुझे नीचे गिराता आ रहा, अभिमान ही मेरा
चरणपद रख दो हृदय में, कुचल दो सब अहम मेरा
तभी हृदय में मेरे ज्योति निर्मल जगमगायेगी
गाँठ जड़ और चेतन की, खुले बिन रह न पायेगी
बना दो शुद्ध मन मेरा, नहीं मैं सत्यधारी हूँ।

दया करिये हे करूणा सिन्धु ! दीनानाथ हितकारी !
धारणा, ध्येय की दृढ़ हो, हे गुरुवर ! प्रेम अवतारी
करूँ उर में सतत दर्शन, समाधि चल पड़े गाढ़ी
क्षमा करिए मेरे अपराध, सब छोटे बड़े भारी
तुम्हीं हो मेरे नारायण, तुम्हारा मैं पुजारी हूँ।

बुद्धिमान कौन है ? जो संसार से प्रेम हटाकर भगवान में प्रेम करे। धनवान कौन है ? प्रभु जो दे, उसी में संतोष करे। चतुर कौन है ? जिसको संसार के भोग न फँसा सकें। त्यागी कौन है ? जिसके मन में संसार की कोई कामना नहीं। कृपण कौन है ? जो ईश्वर के दिये हुए धन का उचित दान करने में संकोच करे।

ईश्वरसाक्षात्कारी पुरुष

विभिन्न प्रकार के सिद्ध पुरुष

लोग नहीं समझते कि विज्ञान केवल इन्द्रियग्राह्य वस्तुओं के ही बारे में ज्ञान प्रदान करता है, इन्द्रियातीत राज्य की कोई खबर वह नहीं देता। प्राचीन ऋषियों ने ईश्वर का साक्षात्कार किया था। वे ही यह खबर दे सके थे; वे कह सके थे, ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार है।

जग में पाँच प्रकार के सिद्ध पुरुष दिखाई देते है :– (१) **स्वप्नसिद्ध**–ये स्वप्न में दर्शन प्राप्त कर सिद्ध हो जाते हैं। (२) **मन्त्रसिद्ध**– ये मन्त्र जपते हुए सिद्ध हो जाते हैं। (३) **अकस्मात् सिद्ध**– जैसे कोई गरीब आदमी जमीन के नीचे गड़ा खजाना पाकर या किसी धनी व्यक्ति की लड़की से विवाह कर एकाएक धनवान बन जाता है, उसी प्रकार कई पापी लोग अचानक स्वयं को बदल डालकर ईश्वरीय राज्य में पहुँच जाते हैं। इन्हें अकस्मात्–सिद्ध कहा जाता है। (४) **कृपासिद्ध**– केवल ईश्वर की कृपा से ही जो सिद्ध हो गये हैं, वे कृपासिद्ध कहलाते हैं। जिस प्रकार किसी को जंगल की सफाई करते करते पुराने तालाब, मकान आदि मिल जाते हैं, फिर उसे स्वयं कष्ट उठाकर यह सब तैयार नहीं करवाना पड़ता, उसी प्रकार कई जन मामूली–सी साधना करते ही सिद्ध हो जाते हैं। (५) **नित्यसिद्ध**– ये जन्मतः सिद्ध होते हैं। जैसे लौकी या कुम्हड़े की बेल में पहले फल आते हैं, पीछे फूल वैसे ही नित्य सिद्ध लोग पहले से सिद्ध होते हैं, बाद में वे लोक–शिक्षा के लिए साधना करते हैं।

शाक्तमतानुसार सिद्ध पुरुष को 'कौल', वेदान्तमतानुसार 'परमहंस' और 'बाउल' नामक वैष्णवमतानुसार 'साँई' कहते हैं।

कुछ लोग होते हैं जो आम खाकर मुँह पोंछकर बैठे रहते हैं, ताकि कोई जान न पाए। पर कोई–कोई ऐसे भी होते हैं कि उन्हें यदि एक भी आम मिल जाए तो वे उसे काटकर सब को थोड़ा–थोड़ा बाँटने के बाद स्वयं खाते हैं। इसी प्रकार कुछ साधक होते हैं, जो ईश्वरदर्शन का आनन्द प्राप्त करने के बाद दूसरों को भी वह आनन्द चखाने का प्रयत्न करते हैं।

ईश्वरोपलब्धि के बाद की अवस्था

ईश्वरदर्शन कर लेने के बाद मनुष्य पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाता है।

किसी–किसी का चैतन्य जाग जाता है। परन्तु इसके कुछ लक्षण हैं। ऐसे व्यक्ति को ईश्वरीय प्रसंग छोड़ दूसरा कुछ भी सुनना या बोलना अच्छा नहीं लगता। जैसे चातक पक्षी। सात समुद्र, गंगा, जमुना आदि नदियाँ ये सभी जल से पूर्ण हैं, परन्तु चातक वृष्टि का ही जल चाहता है। मारे प्यास के छाती फटी जा रही है, फिर भी वह दूसरा जल नहीं पीता।

हृदय में ईश्वर के आगमन का लक्षण क्या है ? जिस प्रकार उषा की लाली सूर्य के उदित होने की सूचना देती है उसी प्रकार निःस्वार्थता, पवित्रता तथा सज्जनता ईश्वर के आगमन की सूचना देती है।

जिस प्रकार राजा किसी नौकर के घर जाने से पहले अपने भण्डार से साज–सामान, अपने बैठने लायक आसन, भोजन–सामग्री आदि भिजवा देता है, उसी प्रकार हरि भी साधक के हृदयभवन में आविर्भूत होने से पहले उसमें प्रेम, भक्ति, विश्वास, व्याकुलता आदि जगा देते हैं।

ईश्वरदर्शन होने का एक लक्षण है आनन्द। जैसे समुद्र में ऊपर तो तरंगों का खूब हिल्लोल–कल्लोल रहता है ; परन्तु नीचे शान्त गम्भीर जल होता है।

ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति होने पर मनुष्य उस नशे में मस्त हो जाता है। शराब न पीते हुए भी वह पूरे शराबी के जैसा प्रतीत होता है। जब मैं अपनी जगज्जननी माँ के चरणों के दर्शन पाता हूँ तब मैं इतना मत्त हो जाता हूँ कि मानो मैंने पाँच बोतल शराब पी ली हो। ऐसी अवस्था में बिना विचार किए, चाहे जिसके हाथ का भोजन नहीं लिया जा सकता ।

मनुष्य के सिद्ध होने पर उसकी अवस्था किस प्रकार की होती है ? जैसे आलू, बैंगन आदि सिद्ध होकर नरम हो जाते हैं ; वैसे ही मनुष्य सिद्ध होने पर नरम हो जाता है, निरहंकार हो जाता है।

सिद्धिप्राप्ति के कुछ लक्षण

यथार्थ आत्मज्ञानी तो वही है जो जीवित रहते हुए भी मृत के समान है, अर्थात् जो मृतदेह की भाँति कामना–वासना से रहित हो गया है।

श्रीरामकृष्ण ने एक बार केशव सेन से कहा था–"यदि तुम और थोड़े उन्नत होकर उच्च तत्त्वों का प्रचार करने लगो तो तुम्हारा दल–बल कुछ नहीं टिक पाएगा। ज्ञान की अवस्था में दल–बल स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीत होते हैं।"

ज्ञानलाभ होने पर ईश्वर दूर के नहीं प्रतीत होते। तब फिर वे 'वे' नहीं रह जाते, 'ये' बन जाते हैं। हृदय में ही उनके दर्शन होते हैं। वे सब के भीतर हैं, जो उन्हें खोजता है, वही पाता है।

जिस प्रकार जल में डुबोया हुआ कुम्भ भीतर–बाहर जल से पूर्ण रहता है, उसी प्रकार ईश्वर में मग्न हुआ व्यक्ति भीतर–बाहर सर्वत्र सर्वव्यापी ईश्वर को ही देखता है।

ईश्वरलाभ हो जाने के बाद सर्वत्र सभी वस्तुओं में वे ही विराजमान दिखाई देते हैं। परन्तु मनुष्यों में उनका अधिक प्रकाश है। फिर मनुष्यों में जो सत्वगुणी भक्त हैं, जिनमें कामिनी–कांचन के भोग की बिल्कुल इच्छा नहीं, उनके भीतर और भी अधिक प्रकाश है।

ईश्वरदर्शन के बाद भक्त को उनकी लीला देखने की अभिलाषा होती है। रावणवध के बाद जब रामचन्द्रजी राक्षसपुरी में प्रवेश करने लगे तो बूढ़ी निकषा दौड़ती हुई भागने लगी। तब लक्ष्मण बोले "राम ! कैसे अचरज की बात है, देखो। यह निकषा कितनी बूढ़ी है, इसने कितना अधिक पुत्र शोक भोगा है, फिर भी इसे प्राणों का इतना भय है कि भाग रही है !" रामचन्द्रजी ने निकषा को अभय प्रदान करते हुए पास बुलवाकर उसके भागने का कारण पूछा। तब निकषा बोली, "राम, मैं इतने दिन जीवित हूँ इसीलिए तुम्हारी इतनी लीलाएँ देख पा रही हूँ। मुझे और भी जीने की इच्छा है, ताकि मैं तुम्हारी और भी लीलाएँ देख सकूँ।"

क्या मुक्त पुरुष के भीतर माया रहती है ? शुद्ध सोने से गहने नहीं गढ़े जा सकते, उसमें थोड़ी–सी खोट मिलानी पड़ती है। इसी प्रकार पूर्ण रूप से मायारहित होने पर देह नहीं टिकती। देह के रहते थोड़ी माया रहती है।

जिस प्रकार बकरे का गला काटने के बाद भी वह थोड़ी देर तक छटपटाता रहता है, उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष जिस अहंभाव को लेकर संसार में विचरण करता है वह निर्जीव होता है, वह उसे काम–कांचन में आबद्ध नहीं कर सकता।

देह का जन्म हुआ है इसलिए मृत्यु भी होगी। किन्तु आत्मा की मृत्यु नहीं है। सुपारी पक जाने पर छिलके से अलग हो जाती है, परन्तु कच्ची सुपारी को छिलके से अलग करना बड़ी टेढ़ी खीर है। ईश्वर के दर्शन होने पर देहात्मबुद्धि चली जाती है, तब देह और आत्मा अलग–अलग हैं यह अनुभव हो जाता है।

यहूदियों ने ईसा मसीह को क्रूस पर चढ़ा उनकी देह में कीलें ठोकी, पर तब भी उन्होंने उनके कल्याण के लिए प्रार्थना की। यह कैसे सम्भव है ?–गीले नारियल में कील ठोंकने से वह भीतरी गरी तक जा चुभती है ; परन्तु नारियल के सूख जाने पर गरी खोपड़ से अलग हो जाती है, तब बाहर कील ठोंकने पर वह गरी को नहीं लगती। ईसा मसीह सूखे खोपड़े की तरह थे, वे देह से अलग थे। इसलिए देह के कष्ट से उन्हें पीड़ा नहीं पहुँच सकी। देह में कीलें ठोकने पर भी उन्होंने आनन्दित चित्त से वैरियों के कल्याण के लिए प्रार्थना की थी।

* * *

ऋणकर्ता पिता शत्रुः माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः।।

(चाणक्यनीति ६/१०)

कर्जदार पिता, व्यभिचारिणी माता, सुन्दर पत्नी और मूर्ख पुत्र– ये चारों शत्रु की तरह दुःख देने वाले हैं।

लल्ला ! पुष्कर आ गया तो ट्रेन क्यों रुकी है ?

प्रेषक-केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

उपरोक्त वाक्य है, हमारे; आप के एवं प्राणी मात्र के भाग्य विधाता, अकारण दयालु श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के मुखारविन्दु से निकले हुये, जिन्हें उन्होंने अपने यौगिक कृपा की हृदयस्थली झाँसी शहर के मुख्य रेलवे स्टेशन पर हमारे अग्रज, एक निष्ठ गुरुभक्त; परम आदरणीय हमारे वष्ठितम् गुरुभाई श्री ईश्वरी प्रसाद खण्डर जी को सम्बोधित करके प्रश्न किया था। आज से कई वर्ष पूर्व आदरणीय भाई खण्डर जी की जीवन-ज्योति आराध्यदेव जी की अखण्ड ज्योति में समाहित हो गयी परन्तु श्री गुरुचरणों के प्रति उनकी असीम श्रद्धा सिद्धयोग के साधकों के लिये सदैव अनुकरणीय बनी रहेगी, ऐसी आशा है। इस आध्यात्मिक प्रसंग को समझना एवं मनन करना ही आज के इस अद्‌भुत कृपा चरित्र का मुख्य अंश है।

उपरोक्त कृपा चरित्र सन् उन्नीस सौ पचासी-छियासी का है। आराध्यदेव जी ने अपने पार्षदगणों के साथ मध्यप्रदेश में "सागर" का एक सप्ताह का यौगिक प्रचार कार्यक्रम खूब धूम-धाम से अपनी सम्पूर्ण यौगिक एश्वर्यों से परिपूर्ण होकर सम्पन्न किया। कार्यक्रम के बाद आराध्यदेव जी को श्री सिद्धगुफा धाम, सवाँई आश्रम आना था। आराध्यदेव जी एवं उनके साथ कार्यक्रम में सहायक रहने वाले पार्षदगणों एवं साथ रहकर आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने वाले भाई बहनों का आरक्षण श्री गुरुदेव जी के साथ ही उत्कल एक्सप्रेस ट्रेन से सागर से टूण्डला तक कराया गया था। उत्कल एक्सप्रेस ट्रेन का समय रात्रि एक बजे आना एवं एक बजकर पाँच मिनट पर छूटने का था। अपने भाई-बहनों में श्री गुरुदेव जी महाराज के चरण कमलों के प्रति कितनी अटूट एवं असीमित श्रद्धा है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण, श्री गुरुदेव भगवान की विदाई के समय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। यह बात लेखनी से परे है। हमारे किसी भी गुरु-भाई बहन ने, जिसने एक भी श्री गुरुदेव की विदाई समारोह का आनन्द लिया होगा, इस रहस्य से अवश्य ही परिचित हो गया होगा एवं उसे इस तथ्य की जानकारी हो ही गयी होगी। अपने श्री गुरुदेव के विषय में क्या लिखा जाय या क्या उपमा दी जाय, कोई शब्द नहीं है। वे प्रेम के पर्यायवाची है।

आदरणीय 'सागर' के गुरुभाई-बहनों ने आध्यात्मिक आत्मविभोर स्थिति में समय से समझौता नहीं किया एवं रात्रि का एक तो प्रचार स्थल पर ही बज गया। कार्यक्रम वाले स्थान से तीन जीप रेलवे स्टेशन सागर गयी थी। पहली जीप में, अखिल ब्रह्माण्ड नायक; परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का स्वरूप साथ में लिये आनन्द कन्द श्री सद्गुरुदेव जी महाराज एवं उनके संकल्पानुसार योग प्रचार का आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करने वाली परम आदरणीया सुश्री उमा बहन के अलावा तीन दम्पति गुरुभाई बहन चल रहे थे। दूसरी जीप में परम आदरणीय ब्रह्मचारियों के साथ श्री पुष्कर जी सवार थे तथा तीसरी जीप

में एक–दो साथ यात्रा करने वाले के साथ,'सागर' मण्डल के वे गुरुभाई बहन यात्रा कर रहे थे जो केवल रेलगाड़ी पर बैठाकर विदाई करने की नीयत से स्टेशन आ रहे थे। तीनों जीपें जब रेलवे स्टेशन सागर पर पहुँची तो रात के दो बज रहे थे एवं उत्कल एक्सप्रेस ट्रेन करीब एक घंटा पूर्व ही जा चुकी थी।

'योगमाया समावृता' की ऐसी मिशाल अन्यत्र मिलना यदि असम्भव नहीं तो दुरुह तो है ही, जैसा कि श्री गुरुदेव में था और है। त्रिलोकी के प्रत्येक पल की परिपूर्ण जानकारी से ओत–प्रोत श्री गुरुदेव अपने प्यारे पार्षदगणों एवं बाल गोपालों से पूछ रहे है, लल्ला ! ट्रेन तो चली गयी, अब क्या किया जाय ? पार्षदगण एवं बाल गोपाल अपनी–अपनी बुद्धिनुसार सलाह दे रहे हैं, एवं श्री गुरुदेव अनाड़ी की तरह उनकी बात सुन रहे हैं। द्रष्टाभाव एवं तटस्थ रहकर श्री गुरुदेव अपने लाड़ले बाल गोपालों एवं पार्षदगणों को आगे का कार्यक्रम तय करने का परामर्श दे रहे हैं। यह तय हुआ कि झाँसी जंक्शन पर उत्कल एक्सप्रेस के पहुँचने का समय साढ़े छः बजे एवं छूटने का समय पौने सात बजे प्रातः काल है। अतः जीप से चलकर उत्कल एक्सप्रेस को झाँसी जंक्शन पर ही पकड़ लिया जाय। अनाथनाथ ने अपने शिष्यों के इस परामर्श पर अपनी सहमति की मुहर लगा दी। एक जीप, जिस पर 'सागर' मण्डल के भाई बहन रेलवे स्टेशन सागर तक पहुँचाने आये थे, वापस कार्यक्रम स्थल सागर चली गयी तथा दो जीपें, एक जिसमें श्री आराध्यदेव जी विराजमान थे एवं दूसरी जिसमें आदरणीय पुष्कर जी ब्रह्मचारी गणों के साथ बैठे थे झाँसी जंक्शन की यात्रा आरम्भ की। ज्योंही दोनों जीपों ने 'सागर' से झाँसी की यात्रा आरम्भ की मौसम अचानक खराब हो गया। धूल भरी तेज आँधी (बवन्डर) चलना आरम्भ हो गयी, झाँसी जाने वाली सड़क पर कई जगह पेड़ गिर गये एवं कुछ देर बाद ओले पड़ने लगे। श्री गुरुदेव की जीप आगे चल रही थी एवं ब्रह्मचारी गण जिस पर सवार थे, वह जीप पीछे चल रही थी। जिस जीप में अनाथनाथ विराजमान थे, उसका ड्राइवर जीप को बेतहाशा चला रहा था एवं दो घन्टे की यात्रा समाप्त होते यह जीप, पीछे चलने वाली जीप से करीब दस–बारह किलो मीटर आगे निकल गयी। श्री गुरुदेव जी ने अपनी जीप के ड्राइवर से कहा, "लल्ला ! बहुत तेज गाड़ी चला रहो हो।" उसने विनीत शब्दों में प्रार्थना किया,"प्रभो ! जिस ट्रेन को हम लोगों को झाँसी जंक्शन पर पकड़ना है, वह साढ़े छः बजे स्टेशन पर पहुँच जायेगी और यदि मैं सामान्य तौर पर गाड़ी चलाऊँ तो हमारी गाड़ी साढ़े सात बजे तक भी झाँसी नहीं पहुँच सकती, यह मैं खूब अच्छी प्रकार से जानता हूँ।" उसकी श्रद्धायुक्त बातों को सुनकर, श्री गुरुदेव जी महाराज, मुस्कराते हुये बोले, "लल्ला! यदि तुम्हारे भाव इस प्रकार के है तो श्री प्रभु जी अवश्य ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।" उसने फिर नम्र निवेदन के साथ कहा, "प्रभो! हमारी बातों को अन्यथा न लेने की कृपा की जाय तथा हमें आशीर्वाद देने की कृपा करें कि मैं आप को झाँसी स्टेशन पर ट्रेन पकड़वा सकूँ।" उस ड्राइवर की बातों को सुनकर त्रिलोकीनाथ मन्द–मन्द मुस्करा रहे थे मानों

अनुमति प्रदान कर रहे हो। यद्यपि जीप का ड्राइवर बड़ी तीव्रगति से चल रहा था परन्तु झाँसी रेलवे स्टेशन पहुँचते–पहुँचते घड़ी ने प्रातः के सात बजा ही दिये। गाड़ी अपने निर्धारित समय अर्थात् छः बजे झाँसी स्टेशन पहुँच चुकी थी, गाड़ी के प्रस्थान का सिगनल भी हो चुका था परन्तु गाड़ी अपने स्थान पर ही खड़ी थी। कारण यह था कि ड्राइवर ने गाड़ी चालू कर दिया था एवं आगे बढ़ाने का प्रयत्न बार–बार कर रहा था। गाड़ी का इन्जन भी चल रहा था परन्तु गाड़ी एक कदम भी आगे नही बढ़ रही थी।

गाड़ी पर आराध्यदेव जी को माल्यार्पण करने एवं चरण स्पर्श करने अपने गुरुभाई बहन बीसियों की संख्या में झाँसी रेलवे स्टेशन के उस प्लेटफार्म पर खड़े थे, जिस पर उत्कल एक्सप्रेस आयी। उत्कल एक्सप्रेस ट्रेन के प्लेटफार्म पर रुकने पर सभी स्लीपर कोचों में अपने प्राणधन श्री प्रभु जी को लोगों ने खोजा परन्तु वे नहीं मिल सके। गाड़ी का डिपारचर सिगनल होने पर सभी भाई–बहन निराश मन, घर जाने की नियत से झाँसी रेलवे स्टेशन से बाहर निकल रहे थे, उसी समय बेतहाशा गति से चलती हुयी श्री आराध्यदेव जी की जीप झाँसी रेलवे स्टेशन के बाहर आकर रुकी। श्री गुरुदेव भगवान की जै, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जै की श्रद्धायुक्त गगन भेदी आवाजों से गजब रौनक छा गयी। श्री गुरुदेव भगवान ने जीप से बाहर निकल कर सबका माल्यार्पण स्वीकार किया एवं सबको आशीर्वाद देकर अपने मुखारबिन्दु से आगन्तुक भाइयों से प्रश्न किया, "लल्ला ! उत्कल एक्सप्रेस है या चली गयी।" आदरणीय गुरुभाई–बहनों ने निवेदन किया, "प्रभु जी! अभी उत्कल एक्सप्रेस तो प्लेटफार्म पर ही खड़ी है परन्तु उसका डिपारचर सिग्नल हुये, करीब पन्द्रह मिनट हो गये, जल्दी चलकर गाड़ी पर बैठने की कृपा करें।" अपने बाल–गोपालों की सलाह को स्वीकार करते हुये, प्लेटफार्म की तरफ चल दिये, जहाँ उत्कल एक्सप्रेस खड़ी थी। उनके पीछे–पीछे सभी भाई–बहन चल दिये। वहाँ पहुँचने पर आराध्यदेव जी का आसन लगाया गया और वे अपने बर्थ पर विराजमान हो गये। यात्रा का सभी सामान ट्रेन में यथास्थान रख दिया गया, एवं उस ट्रेन से यात्रा करने वाले सभी गुरुभाई –बहन यथा स्थान बैठ गये। विदाई देने आये झाँसी मण्डल के भाई–बहन प्लेटफार्म पर खड़े थे। श्री गुरुदेव खिड़की के पास बैठे थे। थोड़ी–थोड़ी देर बाद प्लेटफार्म श्री गुरुदेव भगवान की जै, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जै की गगनभेदी आवाजों से गुन्जायमान हो रहा था। परम आदरणीय श्री खण्डर भाई साहब श्री गुरुदेव भगवान के बिल्कुल पास प्लेटफार्म पर खड़े थे। श्री गुरुदेव भगवान ने उनसे प्रश्न किया,"लल्ला ! अभी पुष्कर आया की नहीं ?" श्री खण्डर भाई साहब ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "प्रभु जी ! अभी पुष्कर नहीं आये है।" करीब आधे घन्टे अन्तराल में श्री महाराज जी ने श्री खण्डर भाई साहब से उपरोक्त प्रश्न चार बार किया एवं उन्होंने चारों बार यही उत्तर दिया, " महाराज जी ! अभी पुष्कर भाई साहब नहीं आये है।"

पाँचवी बार जब श्री प्रभु जी ने प्रश्न किया, "लल्ला ! अभी पुष्कर आया कि नहीं ?" वह जीप जिस पर श्री पुष्कर जी आ रहे थे, एवं तत्काल ही स्टेशन के बाहर आकर रुकी थी, एवं श्री पुष्कर जी उस जीप से उतर कर तत्काल ही जमीन पर खड़े हुये थे, उस प्लेटफार्म से स्पष्ट दिखलायी दे रहा था, जहाँ झाँसी मण्डल के भाई–बहन आराध्यदेव जी की जय–जय कार कर रहे थे। आदरणीय वरिष्ठ गुरुभाई श्री खण्डर जी ने प्रार्थना किया, "प्रभो ! पुष्कर भाई साहब आ गये।" श्री मुख ने आदेश दिया, "लल्ला ! जल्दी करो, सबका सामान इस बोगी में रखवा कर ; साथ चलने वालों को बैठाओ।" श्री गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन चार–पाँच मिनट में ही हो गया। उपस्थित सभी श्रद्धालु भाई बहन समझ गये कि अब ट्रेन चलेगी, अतः सब लोगों ने जल्दी से बारी–बारी प्रणाम (चरणस्पर्श) किया। चरणस्पर्श करने के बाद सभी लोग आनन्द कन्द श्री गुरुदेव जी महाराज एवं अनादि योग–योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जय–जय कर रहे थे, इसी बीच आराध्यदेव जी ने अपने मुखारबिन्दु से श्री खण्डर भाई साहब से कहा, "लल्ला ! पुष्कर आ गया तो ट्रेन क्यों रुकी है ?" मतलब बिल्कुल स्पष्ट है। त्रिलोकीनाथ का संकल्प था कि श्री पुष्कर भाई साहब के सवार होने से पूर्व ट्रेन, अगली दूरी तय न करे।

अपने प्राणधन, श्री गुरुदेव जी महाराज के उपरोक्त वाक्य सुनकर आदरणीय भाई खण्डर साहब की आँखे भर आयी एवं उन्होंने रूँधे कण्ठ से हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, "इस बेचारी ट्रेन की क्या औकात ? त्रिलोकी में कोई भी चर–अचर ऐसा नहीं है जो आप के संकल्प के विपरीत सोचने तक की हिम्मत जुटा सके। आप योगियों के ईश्वर, परमेश्वर एवं सर्वेश्वर है। आप के समान सिर्फ आप ही है। इतना कहते–कहते उनका कण्ठ बन्द हो गया एवं ट्रेन भी अपने गन्तव्य स्थान के लिये चल पड़ी। सभी उपस्थित भाई–बहनों को श्री प्रभु जी ने अपने कमलवत हाथों से आशीर्वाद दिया एवं ट्रेन चलने पर गेट पर खड़े होकर दाहिने हाथ से तब तक आशीर्वाद देते रहे, जब तक स्थूल रूप से हमारे झाँसी मण्डल के भाई बहन दिखायी देते रहे। अन्त में यही सोच–सोच कर मन को सन्तोषित करना पड़ रहा है :–

जिसने देखा है वही बस जानता इस बात को।
कह नहीं सकता कि क्या जादू था उनके प्यार में।।
प्रेममय भगवान प्रियतम, हृदय के अतिशय सरल।
रीझ जाते थे पतित पावन तनिक उद्‌गार में।।
क्या अनोखी शान थी, गुरुदेव के दरबार में।
खुले हाथों था दया का दान प्रभु दरबार में।।

* * *

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

राजेश कुमार सिंह, रोहुआ, बलिया

योग साधन की राह दिखाके, प्रभु रामलाल के मोहन,
भूल गये क्या मोहे भुलाके, प्रभु रामलाल के मोहन।

जिह्वा चंचल है अपने में, प्रभु नाम का रट लगाये,
नयना देखे हर कण-कण में, गुरुजी नजर में आये;
कानों में देकर अमर मंत्र, प्रभु रामलाल के मोहन।
भूल गये क्या.......

मैं अनाड़ी ये क्या जानूं, गुरुवर, कैसे खुश रहते हैं;
कभी यहां, कभी वहां को जाऊँ बिनु तेरे दुख सहते हैं;
ऐ काश ! थेपेड़े खुद आ देते, प्रभु रामलाल के मोहन।
भूल गये क्या.......

दुनियां कहती नभ, थल में प्रभु रामलाल की सत्ता है ;
सवाई आगरा उनकी राजधानी, सिद्ध गुफा का पता है;
पावन भूमि पर दौड़े आऊँ, प्रभु रामलाल के मोहन।
भूल गये क्या.......

असर क्या उस आशीष का, इस मंदिर पे आ करके;
मनोहर छवि कब देखेंगे, इन अंखियों से जी भरें;
राजेश दूर क्यों लगते हो, प्रभु रामलाल के मोहन।
भूल गये क्या......

चंचल हि मनः कृष्ण

रामेश्वर खण्डेलवाल, गंगापुर सिटी

अर्जुन भगवान श्री कृष्ण से कहता है–हे कृष्ण मन बड़ा चंचल है, प्रमथनशील है, जिद्दी है उसका निग्रह करना बहुत कठिन है। मेरे से तो इसका वश में करना बड़ा कठिन है। इस पर भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–

असंशयं महाबाहो मनोपुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

हे महाबाहो ! यह मन बड़ा चंचल है और इसका निग्रह करना बड़ा कठिन है परन्तु हे कुन्तीनन्दन ! अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसका निग्रह किया जाता है।

मन को बार–बार ध्येय में लगाने का नाम अभ्यास है। इस अभ्यास की सिद्धि समय लगाने से होती है। समय भी निरन्तर लगाया जाय। कभी अभ्यास किया, कभी नहीं किया ऐसा नहीं हो। अभ्यास निरन्तर होना चाहिए। इस तरह अभ्यास करने से अभ्यास दृढ होता है साथ ही मन एकाग्र होता है।

अभ्यास के दो भेद हैं– (१) अपना जो लक्ष्य ध्येय है उसमें मनोवृति को लगाये और दूसरी वृति आ जाए अर्थात् दूसरा कुछ भी चिन्तन आ जाए उसकी उपेक्षा कर दें, उससे उदासीन हो जाए। (२) जहाँ–जहाँ मन जाए, वहाँ–वहाँ अपने लक्ष्य को देखें, अपने इष्ट को देखे। अपने मन में यही भाव रहे कि जो भी मुझे महसूस हो रहा है वह सब परमात्मा का ही है। वह परमात्मा ही है। इसके अलावा कुछ नहीं है। क्योंकि परमात्मा परिपूर्ण है, कण–कण में है, जड़–चेतन में है। सब में परमात्मा का अहसास करे तो साधक के मन में केवल परमात्मा का ही भाव रहेगा संसार का नहीं। संसारिक दृश्य भी अगर ध्यान में आ जाये तो उसको भी परमात्मा का समझ कर अपने लक्ष्य में लगा रहे। थोड़े अभ्यास के बाद ये अपने आप मन से निकल जायेंगे और साधक का रास्ता साफ होता चला जायेगा।

साधना करते–करते प्रायः साधकों को उकताहट होती है, निराशा होती है कि ध्यान लगाते इतने दिन हो गये पर तत्व प्राप्ति नहीं हुई तो अब क्या होगी, कैसे होगी? इस बात को लेकर भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि साधक को बिना उकताए, धैर्य के साथ अपनी साधना करते रहना चाहिये। वर्ष के वर्ष बीत जाएँ, शरीर चला जाए तो भी परवाह नहीं पर मन में यह दृढ़ता रहे कि हमको हमारे लक्ष्य की प्राप्ति करनी है।

साधक की यह भूल होती है कि जिस समय परमात्मा के ध्यान में बैठता उस समय सांसारिक वस्तु की याद आने पर वह उसका विरोध करने लगता है। विरोध करने पर उस वस्तु से हमारा सम्बन्ध गहरा होने लगता है। अतः न तो उसका विरोध करे और न ही उससे राग पैदा करें। उसकी उपेक्षा करें, उससे उदासीन हो जाए। इन वस्तुओं से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं

है। इस तरह का भाव हमारे अन्दर होने चाहिए। उस परमात्मा में स्थित होकर कुछ भी चिन्तन न करें। एक चिन्तन 'करते हैं' और एक चिन्तन 'होता है' चिन्तन करें नहीं और अपने आप कोई चिन्तन हो जाए तो उसके साथ अपना सम्बन्ध न जोड़े, तटस्थ रहें।

अभ्यास की सहायता के लिए 'वैराग्य' की भी जरुरत होती है। कारण कि संसार के भोगों से राग जितना हटेगा मन उतना ही परमात्मा में लगेगा। संसार का राग सर्वथा मन से हटाने पर मन में संसार का राग पूर्वक चिन्तन नहीं होगा। अतः पुराने संस्कारों के कारण कभी कोई स्फुरण पैदा हो भी जाए, तो उसकी उपेक्षा कर दे, अर्थात् न राग करे न द्वेष करे। फिर वह स्फुरण अपने आप मिट जाएगी। इस तरह अभ्यास और वैराग्य से मन का निग्रह हो जाता है, मन पकड़ा जाता है।

परमात्मा में मन लगाने की युक्तियाँ

(१) जब साधक ध्यान में बैठे तब सबसे पहले दो–चार लम्बी–लम्बी श्वांस बाहर फैकें और ये भावना करे कि मैंने संसार को सर्वथा निकाल दिया, अब मेरे मन में संसार का चिन्तन नहीं होगा केवल भगवान का ही चिन्तन होगा। भगवान का स्वरूप वही है जो अपने चिन्तन में आ रहा है। जो मन में आ जाए उस को परमात्मा का चिन्तन ही माने यह 'वासुदेवः सर्वम्' का सिद्धान्त है।

(२) जब साधक ध्यान में बैठे तो अपनी आती–जाती श्वांसों पर निगरानी रखे और उनको देखे। धीमी–धीमी, लम्बी–लम्बी श्वांस लेते रहे और हर श्वांस के साथ अपने गुरु मंत्र का जाप भी करते रहे।

(३) परमात्मा का चिन्तन करते–करते मन परमात्मा में तल्लीन करे अगर कोई और चिन्तन आ जाए तो घबरायें नहीं मन को बार–बार अपने ध्येय में लगाते रहे। इस तरह अभ्यास करते रहने पर संसार का राग स्वतः ही छूट जाएगा। यहाँ अंहमता ममता रूप दोषों से सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद हो जाएगा। और अपना मन केवल परमात्मा के चिन्तन में तल्लीन हो जाएगा।

जो साधक अपना अभ्यास नियमित रूप से करता है। बिना घबराहट के बिना उकताए एक ही आसन पर बैठकर अभ्यास करता है उस साधक को सद्गुरुदेव की शक्ति हर समय सहयोग करती है।

सद्गुरुदेव भगवान के आशीर्वाद से साधक का अभ्यास दृढ़ होता जाता है और वह अपनी मंजिल पा लेता है। भगवान सद्गुरुदेव अपने सच्चे साधको की हमेशा हर तरह से रक्षा करते हैं।

गुरुदेव से प्रार्थना

जिसको गुरुदेव का भक्त बनना है उसको अपना ह्रदय सदा शुद्ध रखना है और नित्य एकान्त में ध्यान और भजन का अभ्यास करना है और प्रार्थना करनी है–कि हे गुरुदेव कृपा करो जिससे मैं आपको हर समय अपने पास देखूँ और मेरे ह्रदय रूपी देश में स्थिर आसन जमा लो जिससे पल–पल मै आपको निरखता रहूँ। नित्य आपकी झाँकी अपने मन मंदिर में देखता रहूँ।

श्री सिद्धयोग साधक मंडल गंगापुर सिटी का सप्तदिवसीय योग शिविर सम्पन्न

प्रेषक : संतोष शर्मा

योग योगेश्वर महाप्रभु आनन्दकंद श्री रामलाल जी महाराज एवं आनंदकंद योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की करुणकृपा से आचार्य श्री दासलाल जी महाराज के तत्वावधान में गंगापुर सिटी में सप्त दिवसीय योग शिविर का आयोजन श्री सिद्धयोग साधक मण्डल गंगापुर सिटी द्वारा किया गया। यह कार्यक्रम प्रतिवर्ष इन्हीं दिनों में मनाया जाता है। जिसमें निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रातः ५ बजे से ६ बजे तक ध्यान अभ्यास जिसमें सैकड़ों साधकों ने ध्यान में बैठकर अपनी चित्तवृत्ति को एकाग्र करने का प्रयत्न किया। तथा ६ बजे से ७.३० बजे तक जीवन तत्व साधन तथा योगासन के अन्तर्गत साधकों ने योगासनों का लाभ प्राप्त किया। ७.३० से ८ बजे तक चिकित्सा परामर्श का कार्यक्रम रहा जिसमें अधिक से अधिक संख्या में जिज्ञासुओं ने भाग लिया। तथा ८ बजे से १० बजे तक आरती, गीतापाठ तथा योग सिद्धान्तों पर प्रवचन। इस प्रकार से आयोजन ६ दिन तक चला।

सभी कार्यक्रमों में जिज्ञासुओं ने बडी संख्या में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। जिनमें बनारस, दतिया, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, लखनऊ, दिल्ली, भोपाल तथा सवाई आश्रम से भी ब्रह्मचारीगण जिनमें ब्र० श्री रामस्नेही तिवाडी, श्री सुरेश मिश्रा, ब्र० श्री मुन्ना जी, आदि कार्यक्रम में पधारे तथा आदरणीय श्री पूतानसिंह जी, ठाकुर हरदोई सिद्धगुफा योग साधना आश्रम अवक्षानगर हरदोई से अपने साथियों के साथ तथा मण्डी हिमाचलप्रदेश से श्री हेमराज जी चोपडा तथा बनारस से आदरणीय पाठक जी तथा प्रदीप तथा उनकी धर्मपत्नी भी पधारे, प्रदीप भाई जी के गुरुभक्ति से ओत-प्रोत भजनों ने पूरे वातावरण को आनन्द से सराबोर कर दिया तथा बहुत अच्छे भजन सुनाकर लोगों को आल्हादित किया।

प्रातः गीतापाठ जिसमें नित्य के २ अध्याय का वाचन तथा उनका सार संक्षिप्त में परम पूज्य श्री दासलाल जी महाराज द्वारा सुनाया गया। व्याख्या में महाराज जी ने बताया कि पूरी गीता में १ से लेकर १८ अध्याय तक भगवान कृष्ण चन्द ने योग का उपदेश अर्जुन को दिया है। कि अर्जुन तू जिस अवसाद से आज घिरा हुआ महसूस कर रहा है उससे मुक्त होने का एक मात्र उपाय यही है कि तुम योगमय हो जाओ अर्थात् तुम योगी बन जाओ। तुम सब मनोकामनाओं इच्छाओं को त्याग कर मेरी शरणागत हो जाओ। अपनी बुद्धि और मन को मेरे में ही विलय कर दो। तो तुम मेरे में ही हो जाओगे अर्थात् तुम मुझे ही प्राप्त करोगे।

योगाचार्य डॉ० श्री दासलाल जी द्वारा किया गया गीता पर प्रवचन बहुत ही सरल तथा उत्कृट रूप से समझाया जाना, जिससे सभी योग जिज्ञासुओं ने हृदयांगम किया। योग क्या है ? कैसी विद्या है, जीवन में योगमार्ग से जुड़ने पर क्या परिवर्तन हो जाता है। सद्गुरु सत्ता से जुड़ने के बाद जीवन कैसा प्रकाशमय हो जाता है। पातंजलि जी के अष्टांग योग पर विस्तृत प्रवचन इस सप्तदिवसीय योग कार्यक्रम में किए गए। तथा इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य यही रहता है कि योग विद्या का अमर संदेश जन–जन तक पहुँचे। योग वो अमर विद्या है जिसको प्राप्त करने पर जीवन संसार के आवागमन से हमेशा के लिए मुक्त हो जाता है। योग साधन योग एवं सिद्धयोग २ प्रकार से है। जिसमें सिद्धयोग में सिद्धगुरुदेव की कृपाऐं बरसती है और साधक अपनी साधना में उनके बताये मार्ग पर चलकर योग की विभिन्न भूमिकाओं में प्रवेश करता चला जाता है।

योग के बारे में बताते हुए आचार्य जी ने बताया कि जहाँ चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है मन निर्विषयी हो जाता है और मन पूर्णतः एकाग्र हो अपने आत्म स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, यही योग है। परमात्मा के साक्षात्कार करने का एक मार्ग जिसमें मंत्र जाप, धारण, ध्यान, समाधि से मन तो पवन की तरह पूरे वेग से भागता है। इसे वश में कर एकाग्र करना। जिसके लिए उपाय बतायें है। निरन्तर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन वश में हो जाता है। मंत्र जाप से दृढ़ता आती है। प्रकाश बढ़ता है। धीरे–धीरे मंत्र जाप करते–करते साधक ध्यान की ओर बढ़ने लगता है तथा आगे प्रगति की ओर उन्मुख होता है।

इस तरह हजारों साधकों ने इस योग शिविर में आकर योग के अमर संदेश को सुना, कैसे योग में बैठा जा सकता है। व्यक्ति सभी दुःखों एवं कष्टों से मुक्त हो सकता है। पूरे सात दिन तक योग का वातावरण बना रहा।

यह प्रभुजी की अनुपम कृपा का ही फल है कि हर वर्ष इस योग शिविर में हजारों की संख्या में लोग अपने प्रभुजी के दरबार से जुड़ते जा रहे है। तथा उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। यह सत्य है कि प्रभुजी अपने संस्कारी बच्चों को अपनी ओर स्वयं खींच लिया करते हैं। संस्करी बच्चे ही इस सद्गुरु सत्ता से जुड पाते है। पूरे कार्यक्रम में प्रभुजी के भजनों से, योग के प्रवचनों से सद्गुरुदेव की महिमा की गुणगान से उपस्थित जन समुदाय को अल्हाद से भर दिया। दिनांक १ जन० २००५ को विशाल भण्डारे का आयोजन किया गया। जिसमें हजारों श्रृद्धालुओं ने प्रभुजी का प्रसाद पाया। तथा साधक मण्डल तथा गुरु भाई–बहिनों के अति उत्साह एवं सहयोग से यह कार्यक्रम सुचारू रूप से सम्पन्न हुआ।

प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय के तत्वावधान में

२८वाँ योग शिविर-संगीत सम्मेलन सम्पन्न

परम करुणा निकेतन प्रातः स्मरणीय योगीराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा वर्ष १६७४ में स्थापित प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय झाँसी का २८वाँ वार्षिकोत्सव गत १५ से १६ नवम्बर २००४ तक "योग शिविर एवं संगीत सम्मेलन" के रूप में मनाया गया। इस अवसर पर सैकड़ों साधक एकत्रित हुए और योग, ध्यान तथा संगीत की उच्चतम अवस्थाओं का सहज साक्षात्कार किया। प्रातः ५ बजे से प्रभुजी की मंगला आरती के साथ ही कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाते, जो रात्रि तक चलते रहते।

आचार्य श्री चन्द्रहास जी शर्मा (दिल्ली) के निर्देशन में कानपुर मंडल के भाई श्री प्रेम चन्द जी सविता एवं उनके अन्य सहयोगियों द्वारा प्राणायाम एवं योगासन का कार्यक्रम प्रातःकालीन बेला में लगभग एक घण्टे चलता जिसमें सैकड़ों लोगों ने सहभाग किया। इसमें हठीले रोगों जैसे गठिया, थाइराइड, अस्थमा, हृदयरोग, उदररोग आदि के निवारण हेतु आवश्यक एवं उपयोगी योग मुद्राओं का अभ्यास कराया गया। इसके बाद भाई श्री भुवनेन्द्र जी झा के नेतृत्व में सस्वर व अलौकिक लयबद्धता के साथ श्री प्रभु जी की आरती होती और गीता पाठ कराया जाता। पश्चात् आचार्य श्री चन्द्रहासजी शर्मा द्वारा योग संबंधी प्रवचन सुनने का उपस्थित जनों को सुअवसर मिलता। उन्होंने कहा कि सिद्धों की कृपा से ही मनुष्य अपने जीवन को योगमय बनाकर अपना कल्याण कर सकता है। जीवन के चरमलक्ष्य की प्राप्ति का यही एकमात्र मार्ग है। आचार्यवर ने 'सिद्धयोग' की सरलतम शब्दों में सहज व्याख्या की।

महाविद्यालय द्वारा आयोजित विभिन्न संगीत प्रतियोगिताओं में प्रान्त के विभिन्न भागों से आये लगभग १४६ प्रतियोगियों ने हिस्सा लिया। सभी ने अपनी प्रस्तुतियों में कला के उत्कृष्ट आयामों का प्रदर्शन किया। सभी ने संगीत–प्रतिभाओं को हृदय से सराहा। सर्व श्री आचार्य चन्द्रहास शर्मा, भाई भुवनेन्द्र झा, काँगड़ा के स्वामी विजय पुरी जी एवं उनके ज्येष्ठ भ्राता पवन पुरी की उपस्थिति में विजयी प्रतिभागियों को १७ नवम्बर को पुरस्कार प्रदान किए गये। इस अवसर पर १८–१६ नवम्बर को देश के सुदूर क्षेत्रों से पधारे लगभग ३० कलाकारों ने अपनी प्रस्तुतियों से उपस्थित जनसमुदाय को मंत्रमुग्ध कर दिया।

इस योग शिविर व संगीत सम्मेलन में इलाहाबाद, कानपुर, कांगड़ा, कोंच कालपी, ग्वालियर, लखनऊ, दिल्ली आदि मंडलों से आये गुरुभाई–बहनों ने हिस्सा लिया। उनके ठहरने, भोजन आदि की व्यवस्था महाविद्यालय की ओर से ही की गई।

❊ ❊ ❊

●स्वास्थ्य चर्चा

वज्रासन

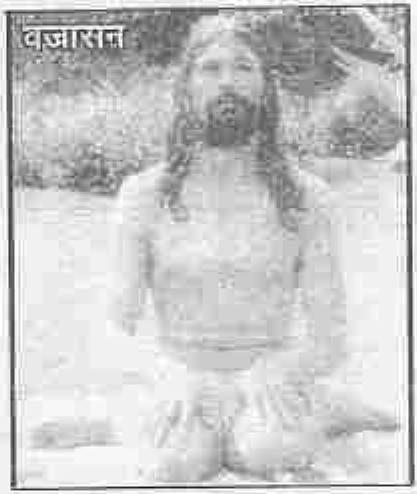

जङ्घभ्यां वज्रवत्कृत्वा, गुदपार्श्वपदावुभौ।
पज्रासनं भवेदेतधोगिनां सिद्धि दायकम्।।

विधि—दोनों जंघाओं को वज्रवत् दृढ़ करके दोनों पैरों को गुदा के पार्श्व भाव में जमाकर सीधे बैठ जायें। इसी को वज्रासन कहते हैं। कदाचित यही इस आसन को किये हुए ही पीछे को लेट जायें। छाती को दृढ़ता के साथ ऊपर को निकाल लें। दोनों हाथों को मिलाकर (अंगुलियों में अंगुलियाँ डालकर) छाती पर रख लें या पिछली ओर शिर के नीचे जमाकर रख लें तो इसी को प्रसुप्त वज्रासन कहते हैं।

लाभ—यह आसन शरीर में दृढ़ता देता है। दोनों जंघा छाती व उदर—विकारों का नाशक है।

सिंहासन

गुल्फौ च वृषणस्याधः,
सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्य गुल्फं च,
दक्ष गुल्फं तु सव्य के।
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य,
स्वांगुली सम्प्रसार्य च।
व्यात्त यक्रो निरीक्षेत,
नासाग्रे सु समाहितः।
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुङ्गवैः,
बन्ध त्र्यं संस्थानं कुरुते-चासनोत्तम्।।

विधि—पहले सीधे स्वभाव बैठकर अपने पैरों के दोनों गुल्फों को (अर्थात टखने को) सीवनी के दायें और बायें लगायें, दाहिने भाग में बायें टखने (एड़ी गाँठ) को एवं बायें भाग में दाहिने टखने को लगायें। इसके बाद दोनों हाथों की अंगुलियों को खूब फैलाकर दृढ़ता के साथ अपने दोनों घुटनों पर जमा कर रखें, उसके बाद सिंह के समान मुख फैलाकर लपलपाती हुई जीभ को निकाल कर भ्रूमध्य को देखें, इसी का नाम **सिंहासन** है।

समय—साधारण पूर्वोक्त नियमानुसार शनैःशनैः अभ्यास को बढ़ायें।

लाभ—इस आसन में सिंह के बल की धारणा करने से दिल की शक्ति बढ़ती है। जालन्धर बन्ध के फलस्वरूप मन की एकाग्रता स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरूप

जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना स्वाभाविक है। उसके साथ–साथ यह पेट सम्बन्धी सभी प्रकार के वात रोगों का नाशक है। मूलबन्ध में अपान के ऊर्ध्वाकर्षण से और ऊपर से उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध के लगने से प्राणापान गति रोधन होकर कुण्डलनी का बोधक है। सब प्रकार आरोग्यप्रद एवं शक्तिवर्धक है।

प्राणासन

विधि–सीधे बैठ जाइये, अपने एक पैर को दूसरे पैर की जंघा पर (पद्मासन की तरह) रख लीजिये, दूसरे पैर के पादतल को जमीन में रखकर घुटना उठाये रखें, जिस ओर से घुटना उठा है उसी ओर से हाथ को उसी पैर के जंघा व पिण्डली के बीच से निकाल कर हाथ के पंजे को पादतल के पास ही जमीन में जमा दीजिये, इसके बाद जो पैर जंघा पर रखा गया है उसी पैर की तरफ के हाथ को उसी पैर के घुटने पर जमा दें। इसी का नाम प्राणासन है।

फल–इस आसन के करने में दोनों भुजदण्ड हाथों का ग्रन्थी भाग, अंगुलियाँ, पादतल और घुटने सभी पर पूरा–पूरा तनाव पड़ता है। अतः इन सभी अंगों के लिये दृढ़ता जनक है। आसनों की प्रक्रिया में वे सब आसन बहुत सरल से मालूम होते हैं किन्तु इनका प्रभाव भिन्न–भिन्न अंगों पर पड़ने के कारण आसन ही पूर्ण आरोग्यता प्रदान कर सकते हैं।

चतुष्कोणासन

विधि–बहुत सरल है, सीधे बैठ जाइये, एक पैर को मोड़ कर कटि पार्श्व में वज्रासन की तरह ले जाइये, उसके बाद दूसरी ओर के पैर की पिण्डली को अपने हाथ की कोहनी पर तुलनात्मक रूप से रख लीजिये व उसके दूसरी ओर के हाथ को गर्दन के पीछे से घुमाकर इस दूसरे हाथ की अंगुलियों में अंगुली डाल कर पकड़ लीजिये, बन गया चतुष्कोणासन। इस आसन को दोनों ओर से बदल–बदल कर दोनों पैरों से अवश्य करना चाहिये।

समय–शनैः शनैः बढ़ाना चाहिये।

लाभ–इस आसन का तनाव गर्दन, जंघा व भुजदण्डों पर पड़ता है। अतः वहाँ की नाड़ियों के लिये यह गति दाता व्यायाम है। इन सभी स्नायुओं में पूरी–पूरी गति देता है।

वीरासन

एक पादमथैकस्मिन्शियन्यासे दुरुमध्यमे।
इतसिंमस्तथा पश्चाद्वीरासन मितीरितम्।।

विधि–पद्मासन की ही तरह इसमें भी एक पैर को दूसरे पैर की जंघा पर जमा कर रखें व दूसरे पैर को उसके ऊपर रखें व छाती को आगे की ओर तनाव देकर और अपने दोनों हाथों को घुटनों पर जमा कर रखें, इसी का नाम वीरासन है। (कहीं कहीं इसमें हाथों के अग्र भाग को (पंजों को) उलटा कर पिछली ओर करने का भी क्रम है।

समय–साधारण पूर्ववत् शनैः शनैः बढ़ायें।

लाभ–ध्यानाभ्यास के लिये उत्कृष्ट है, मन में उत्साह जनक है। * * *

प्रेम-साधना

परमेश्वर में प्रेम होना ही वस्तुतः विश्व में प्रेम होना है। विश्व के समस्त प्राणियों में प्रेम ही भगवान में प्रेम है, क्योंकि स्वयं परमात्मा ही सबमें आत्म स्वरूप से विराजमान हैं। जो व्यक्ति इस भगवत्प्रेम के रहस्य को भली प्रकार समझ लेता है, उसका अपनी आत्मा के समान सभी प्राणियों के साथ प्रेम हो जाता है। योगीराज श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में कहा है कि–

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।३२।।

हे अर्जुन! जो योगी अपने ही समान सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख में भी सम देखता है, वह योगी परमश्रेष्ठ माना गया है। अपनी सादृश्यता के सम देखने का यही अभिप्राय है कि जैसे मनुष्य अपने सिर–हाथ–पैर और गुदा आदि अंगों में भिन्नता होते हुए भी उनमें समान रूप से आत्मभाव रखता है अर्थात् सारे अंगों में अपनापन समान होने से सुख और दुःख को समान ही देखता है, वैसे ही सम्पूर्ण भूतों में जो समभाव देखता है, इस प्रकार के समत्व भाव को प्राप्त भक्त का हृदय प्रेम से सराबोर रहता है। उसकी दृष्टि सबके प्रति प्रेम की ही हो जाती है। उसके हृदय में किसी के साथ भी घृणा और द्वेष लेश भी नहीं रहता। उसकी दृष्टि में तो सम्पूर्ण संसार एक वासुदेव रूप ही हो जाता है।

इस परम तत्व को न जानने के कारण ही प्रायः मनुष्य राग–द्वेष करते हैं तथा परमात्मा को छोड़कर सांसारिक विषय भोगों की ओर दौड़ते हैं और बार–बार दुःख को प्राप्त होते हैं। मनुष्य जो स्त्री–पुत्र, धन आदि पदार्थों में सुख समझकर प्रेम करते हैं उन आपातरमणीय विषयों में उन्हें जो सुख की प्रतीति होती है वह केवल भ्रांति से है। वास्तव में विषयों में सुख है ही नहीं, परन्तु जिस प्रकार सूर्य की किरणों से मरुभूमि में जल के बिना हुए ही उसकी प्रतीति होती है और प्यासे हिरण उसकी ओर दौड़ते हैं तथा अन्त में निराश होकर मर जाते हैं, ठीक इसी प्रकार सांसारिक मनुष्य संसार के पदार्थों के पीछे सुख की आशा से दौड़ते हुए जीवन के अमूल्य समय को व्यर्थ ही बिता देते है और असली नित्य परमात्म–सुख से वंचित रह जाते हैं।

●●●

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तो का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

191-उमाशंकर भारद्वाज
B-65 बालाजीपुरम् अलबतिया रोड,
शाहगंज आगरा (उ0प्र0) 282010

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

(यजुर्वेद ४०/८)

अर्थात्–वह परमात्मा सबमें व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान, जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है और वह कभी–शरीर–धारण या जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, जो नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता। जिसमें क्लेश, दुःख, अज्ञान कभी नहीं होता। वही ईश्वर सदा स्तुति प्रार्थना और उपासना करने योग्य है, उससे अन्य कोई नहीं।

प्रकाशक एवं मुद्रक :- विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा में राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र.(डॉ.) दासला